ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 08 फरवरी 2026

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 08 फरवरी 2026 से 14 फरवरी 2026

माघ शु. 15 ● वि० सं०-2082 ● वर्ष 67, अंक 06, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

डी.ए.वी. कोटा में मनाया गया 77वाँ गणतंत्र दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, कोटा में 77वाँ गणतंत्र दिवस अत्यंत गरिमा, उत्साह और देशभक्ति की भावना के साथ मनाया गया। इस समारोह में विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों तथा गणमान्य अतिथियों की गरिमामयी उपस्थिति रही।

कार्यक्रम का शुभारंभ मुख्य अतिथि एवं विद्यालय के एल.एम.सी. के उपाध्यक्ष श्रीमान एम.एल. पाटोदी द्वारा ध्वजारोहण के साथ किया गया। अनुशासित मार्च–पास्ट प्रस्तुत किया गया।

प्राचार्या श्रीमती पल्लवी अरोड़ा ने अपने प्रेरक संबोधन में भारतीय संविधान के मूल्यों, अधिकारों एवं कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि युवा पीढ़ी ही राष्ट्र की सच्ची शक्ति है और विद्यार्थियों को जिम्मेदार नागरिक बनकर देश के विकास में योगदान देना चाहिए।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में देशभक्ति गीत तथा नृत्य–नाटिका "पुलवामा के शहीदों को श्रद्धांजलि" अत्यंत भावुक कर देने वाले रहे।

स्वरा ने अपने ओजस्वी भाषण के माध्यम से विद्यार्थियों को राष्ट्रप्रेम, अनुशासन और कर्तव्यनिष्ठा का संदेश दिया। राजस्थानी लोकनृत्य की दर्शकों ने भरपूर सराहना की।

मुख्य अतिथि एम. एल. पाटोदी ने अपने संबोधन में संविधान की गरिमा बनाए रखने, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक समरसता पर बल देते हुए विद्यार्थियों को राष्ट्रनिर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया।

मानवती आर्य कन्या विद्यालय हांसी ने चलाया 'नो नशा नेशन' अभियान

मानवती आर्य कन्या उच्च विद्यालय, हाँसी के द्वारा हासी के न्यायिक प्रांगण में समाज को नशा मुक्त बनाने के उद्देश्य से चलाए जा रहे **'नो नशा**

नेशन' अभियान के तहत एक 100 कुण्डीय हवन का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता जिला बार एसोसिएशन हांसी के प्रधान श्री पवन रापड़िया जी ने की।

प्रत्येक कुण्ड़ की अग्नि ने यह संदेश दिया कि नशा केवल क्षति और अंधकार फैलाता है जबकि लक्ष्य, अनुशासन और मेहनत जीवन को उज्ज्वल और सुरक्षित बनाते हैं।

कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए श्री राजेश खोथ जी ने डी.ए.वी. संस्था एवं जिला बार एसोसिएशन हांसी की सराहना की।

श्री वेद प्रकाश जी नारंग ने कार्यक्रम में आए हुए सभी मेहमानों का स्वागत व अभिनन्दन किया और कहा यदि एक व्यक्ति भी नशा छोड़ता है तो यह आयोजन सार्थक है। श्री साहिल भयाना जी ने श्री सत्यपाल जी आर्य व अन्य अतिथियों ने भी सम्बोधित किया।

डी.ए.वी. संस्था में सचिव सत्यपाल आर्य बतौर विशिष्ट अतिथि उपस्थित रहे।

आर्यसमाज सांताक्रुज में वैदिक प्रश्नोत्तरी

आर्य वीर दल, मुंबई एवं आर्य समाज सांताक्रुज के संयुक्त तत्वाधान में बाल प्रतिभा मंच के वैदिक सिद्धांत एवं ज्ञानवर्धक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन आर्यसमाज सांताक्रुज, मुंबई में किया गया।

कार्यक्रम का शुभारंभ यज्ञ के साथ हुआ। इसके पश्चात् अल्पाहार

एवं प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता में कुल 40 प्रतिभागियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। प्रश्नोत्तर क्रम अत्यंत ज्ञानवर्धक एवं प्रभावशाली रहा।

मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित श्री हरीश आर्य जी (प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, मुंबई) ने अपने ओजस्वी उद्बोधन से सभी को प्रेरित किया। विशिष्ट अतिथि श्री विजय गौतम जी (महामंत्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, मुंबई) ने आयोजक टीम को इस सफल आयोजन के लिए बधाई दी।

पुरस्कार वितरण समारोह में श्री नरेन्द्र शास्त्री एवं श्री दिलीप पालीवाल ने प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान कर उनका उत्साहवर्धन किया।

श्री कल्पेश आर्य द्वारा प्रस्तुत काव्य पाठ को श्रोताओं ने सराहा। श्री गौरव मेहरा जी द्वारा प्रातः जागरण के मंत्रों का सस्वर पाठ किया गया।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 08 फरवरी 2026 से 14 फरवरी 2026
मनोबल, सत्य, यश, श्री

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मनसः काममाकूतिं, वाचः सत्यमशीय।
पशूनां रूपमन्नस्य रसो, यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।।
यजु ३९.४

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**मनसः**) मन की (**कामं**) इच्छा–शक्ति को [तथा] (**आकूतिं**) संकल्प–शक्ति को [और] (**वाचः**) वाणी के (**सत्यं**) सत्य को (**अशीय**) प्राप्त करूं। (**पशूनां**) पशुओं का (**रूपं**) रूप, (**अन्नस्य**) अन्न का (**रसः**) रस, (**यशः**) कीर्ति [और] (**श्रीः**) श्री (**मयि**) मुझमें (**श्रयतां**) स्थित हो। (**स्वाहा**) एतदर्थ आहुति देता हूं, सत्क्रिया करता हूं।

मैं चाहता हूं कि मैं एक उत्कृष्ट मानव बनूं, मेरे अन्दर विविध शक्तियाँ अपने पूर्णरूप में निवास करें। मेरे मन के अन्दर प्रबल इच्छा शक्ति (काम) और संकल्प शक्ति (आकूति) हो। मानव इच्छाएं करता रहता है, परन्तु वे पूर्ण नहीं होतीं, यह इच्छा शक्ति की दुर्बलता का चिन्ह है। योगी जन बताते हैं कि इच्छा शक्ति को बलवान् बना लेने पर मनुष्य जो इच्छा करता है वह पूर्ण होकर रहती है। वह इच्छा करता है कि अमुक पापी धर्मात्मा बन जाए, या अमुक रोगी का रोग दूर हो जाए, तो सचमुच वैसा ही हो जाता है। मन की दूसरी शक्ति संकल्प शक्ति है। संकल्प की दृढ़ता होने पर मनुष्य अपने व्रत से च्युत नहीं होता। जो व्रत एक बार धारण कर लेता है, अन्त तक उसका निर्वाह करता है। यदि वह संकल्प करता है कि मैं आज से ब्रह्मचारी रहूंगा, तो उस पर दृढ़ रहता है। यदि वह संकल्प करता है कि मैं आज से धूम्रपान करना छोड़ता हूं, तो सचमुच उसका यह व्यसन छूट जाता है। इसके विपरीत जिनमें संकल्प शक्ति की दृढ़ता नहीं होती, वे नित्य नवीन–नवीन संकल्प करते हैं, और किसी न किसी बहाने उन्हें तोड़ते रहते हैं।

मेरी यह भी कामना है कि मेरी वाणी में सत्य हो। वाणी में सत्य तभी आ सकता है, यदि मन में भी सत्य हो। यदि मन में सत्य होगा, तो वह कर्म में भी आयेगा। इस प्रकार मनसा, वाचा, कर्मणा मैं सत्यमय हो जाऊं, यह मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। पतंजलि मुनि ने कहा है कि जिसके अन्दर सत्य प्रतिष्ठित हो जाता है, उसे क्रिया–फलाश्रयत्व प्राप्त हो जाता है, उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। उसकी वाणी से दिये गये आशीर्वाद सत्य सिद्ध होते हैं। मेरी वाणी में भी यह दिव्य शक्ति आये।

मेरी यह भी अभिलाषा है कि मुझे गाय आदि दुधारू पशुओं का दूध यथेच्छ मात्रा में मिले, जिससे उसके सेवन से प्राप्त होनेवाला सौन्दर्य मुझमें आये। मुझे सात्त्विक अन्नों से मिलनेवाला रस–रक्त भी प्राप्त हो। मुझे धर्म और सत्कर्म से प्राप्त होनेवाली कीर्ति भी मिले और मेरी श्री, मेरी शोभा, दिग्दिगन्त में फैले। उक्त सब कामनाओं और आदर्शों की पूर्ति के लिए 'स्वाहा' हो, सत्क्रियाओं और सत्यप्रयासों की निरन्तर आहुति पड़ती रहे।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

'प्रभुभक्ति' पुस्तक में स्वामी जी ने आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी और शरीर को नश्वर बताते हुए (जीवन का कभी भी विश्वास नहीं है।) मानव को सदैव ईश्वर के ध्यान में व शुभ कर्मों में लिप्त रहने के लिए प्रेरित किया है। पता नहीं कौन–सा क्षण इस शरीर को आत्मा से पृथक कर दे। इस संसार में कितनी दुःखदायी स्थितियाँ हैं उनसे पार उतरने का माध्यम शुभ–कर्म व ईश्वर साधना ही है।

इस कर्म व भक्ति का माध्यम यह शरीर ही है इसलिए इसे भी स्वस्थ रखना आवश्यक है तभी तो हम भक्ति कर सकेंगे, उन्नत कर्म कर सकेंगे। टूटी–फूटी मोटर साइकिल या मरियल टट्टू हमें गंतव्य पर नहीं पहुँचा सकते। अतः सावधानी पूर्वक सुखमय जीवन जीओ और इह लोक–परलोक सुधार के कर्म में रत रहो...।

.... अब आगे

मैं यह भी नहीं कहता कि शरीर को संसार के भोगों से वंचित रखिये। नहीं, जितने भोग भोगे जा सकते हों भोग लें, परन्तु यह स्मरण रखिये–

भोगा न भुक्ता वयमेव
भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा
न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

"मैंने विषयों का भोग नहीं किया किन्तु विषयों ने ही मुझे भोग लिया। मैंने तप न किया, पर तपों ने ही मुझे तप डाला। काल नहीं बीता, हम ही बीत गये। हमारी तृष्णा बूढ़ी न हुई, हम ही बूढ़े हो गये।"

हमने भोग न भोगा,
भोगों ने भुगताया हमें कहीं।
हमने तप नहीं किया, तपों
ने हमें तपाया न्यून नहीं।।
काल न बीता बीते हम ही,
किया व्यर्थ ही जग–व्यवहार।
तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई, हम
गलपत पहुँचे अन्त किनार।।

तेन त्यक्तेन–

सांसारिक भोगों के भोगने से कोई रोकता नहीं है, न ही कोई यह कहता है कि सब कुछ छोड़कर अकर्मण्य हो जाओ, गार्हस्थ्य आश्रम त्यागकर किसी वन में जा बैठो। कभी कोई आपको यह उपदेश न देगा कि संसार के बन्धनों, झंझटों और कष्टों से घबराकर भीरु बन जाओ। कहने का तात्पर्य यह है कि यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र को सदा सम्मुख रखो–

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।'

"तप–त्याग से उपभोग कर, मत ललचा, (जरा सोच तो सही) यह धन किसका है ?" त्यागभाव से भोग कीजिये। मैं आजकल निजाम–सरकार की गुलबर्गा जेल में कैदी हूँ। इस जेल के वार्ड नम्बर 8 में रहता हूँ। अब यह वार्ड मेरे ही नाम से विख्यात हो गया है। महात्मा नारायण स्वामी जी जिस वार्ड में रहते हैं, वह भी उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। राजगुरु पं. धुरेन्द्र शास्त्री Segregation-ward में रहते हैं, परन्तु अब उसे सेगरेगेशन वार्ड नहीं कहा जाता, शास्त्री जी का वार्ड कहा जाता है। सब सत्याग्रही जेल के भगवे रंग के कपड़े पहनते हैं, जेल के 'तसले' में दाल लेते हैं, 'चम्पू' में पानी पीते हैं, जेल का टाट और कम्बल नीचे बिछाते हैं, जेल की इन सब वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, परन्तु इन्हें अपना नहीं समझते। अपनी कैद के दिन गुजारकर हम चल देंगे और ये लम्बे कमरे, ये बरतन, ये टाट और कम्बल यहीं छोड़ जायेंगे। जब हमें मुक्त किया जाएगा तो हम इन वस्तुओं से लिपट–लिपटकर रोयेंगे थोड़े ही ! अपितु प्रसन्नता से इन्हें छोड़कर जेल से चले जायेंगे। इसी को कहते हैं **'त्यक्तेन भुंजीथा।'** एक उदाहरण देखिये–एक यात्री यात्रा के दिनों में किसी धर्मशाला अथवा सराय में ठहरता है। वहाँ कुछ घण्टे अथवा कुछ दिन रहता है, वहाँ के सारे पदार्थ प्रयोग करता है। पलंग पर सोता है, बर्तनों में खाना पकवाता है, कुर्सियों पर बैठता है, साथ ही वाटिका से पुष्प लेता है, फल खाता है, दूसरे यात्रियों से वार्तालाप करता है, खेलता है, किन्तु उसके मन में यह कभी नहीं आता कि मैं इन सब वस्तुओं का स्वामी हूँ और मैं इन सबको उठाकर साथ लेता चलूँ। वह उन वस्तुओं का भोग तो करता है परन्तु उनमें लिप्त नहीं हो

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

ईश्वर-विचार

● पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय

हिन्दुओं की देखा–देखी ईसाइयों ने भी एक अवतार की कहानी गढ़ ली कि ईसा खुदा का अवतार या खुदा का बेटा था; जैसे राम और कृष्ण का अवतार होता है।

बहुत से लोगों ने अपना मत चलाने और रोज़ी कमाने के लिये अवतारों की बात गढ़ ली और उनकी मूर्तियाँ मन्दिरों में रखकर उनको पुजवाने लगे। इससे संसार में भेड़ चाल बढ़ गई। पुजावा और रुपया पैसा आने लगा। पुजारियों की जीविका चली। साधारण लोगों में अन्धविश्वास बढ़ गया, इससे मतमतान्तर भी बढ़ गये। बुद्धिमान् लोगों को चाहिए कि ऐसी बातों को छोड़ें।

लोग कहा करते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वह सब कुछ कर सकता है, अवतार भी ले सकता है, अनेक रूप भी धारण कर सकता है। लोग अज्ञानवश यह समझते हैं रूप धारण करना या अवतार लेना कोई बड़ी तारीफ़ की बात है। जैसे कोई कहे कि मेरा बाप तो बड़ा ताकतवर है, वह गधा भी बन सकता है या मेरा गुरु बड़ा होशियार है, वह झूठ भी बोल सकता है और चोरी भी कर सकता है। भोले भाइयो सोचो ! यह जीव की कमज़ोरी है कि उसको पुरुष, स्त्री, पशु–पक्षी की योनि में आना पड़ता है और अपने काम करने के लिए तीर, तलवार या बन्दूक का सहारा लेना पड़ता है। आप इसको बड़प्पन समझते हैं। यदि राजा कमज़ोर न होता तो उसे सेना की सहायता की ज़रुरत न पड़ती। आप कमज़ोरी को ताकत और छुटपन को बड़प्पन समझकर ईश्वर को भी ऐसा ही समझने लगे। ईश्वर के लिये ऐसा कहना उसका अनादर करना है।

अवतार मानने से एक बड़ी हानि यह हुई है कि लोगों ने इन्हीं की मूर्तियों की पूजा आरम्भ कर दी और ईश्वर की पूजा को भूल गये। उन्होंने ईश्वर को जानने की कोशिश ही नहीं की। सारी आयु घण्टा घड़ियाल पीटने में ही लगे रहे। इससे असली उपासना की रीति भी छूट गई। जब तक अज्ञान रहेगा लोग इसी प्रकार ईश्वर–विमुख रहेंगे और धोखे में समझते रहेंगे कि हम ईश्वर को पूजते हैं।

संसार में सब से बुरी चीज़ अविद्या में फँस कर लोग जड़ पदार्थों को ईश्वर समझ बैठते हैं। अगर मैं किसी वृक्ष के ठूँठ को गुरु समझ लूँ और नित्य उठ कर उसको प्रणाम किया करुँ तो वह ठूँठ हमें विद्या तो न पढ़ा सकेगा। इसी प्रकार यदि मैं अज्ञान से किसी पत्थर की मूर्ति को ईश्वर या देवता मान लूँ तो वह मुझे कुछ ज्ञान नहीं दे सकता। जो मूर्ति पूजा में लगे रहते हैं उनसे यह अज्ञान मरण पर्यन्त भी नहीं छूटता।

ज्ञानचन्द्र – ईश्वर की उपासना किस प्रकार करें।

स्वामी जी–पहली बात तो यह है कि ईश्वर की उपासना का अर्थ क्या है और प्रयोजन क्या है ? कुछ लोग समझते हैं कि ईश्वर को भोग लगाना और उसको कपड़े पहनाना, रात को सुला देना, प्रातःकाल जगाना, राम को मन्दिर में दातौन रख देना यह ईश्वर पूजा है। यह बड़ी भूल है। ईश्वर तो संसार को खिलाता है। वह भूखा नहीं, प्यासा नहीं, उसे सर्दी नहीं लगती, न गर्मी लगती है। ऐसे ईश्वर को न कोई खिला सकता है, न पहना सकता है। लोग अपने को धोखा देते हैं जो कहते हैं। कि हम ईश्वर को भोग लगा रहे हैं, सच्ची बात तो यह है कि भोग पुजारी लोग उड़ाते हैं और तुम उन्हीं की पूजा करते हो ईश्वर की नहीं। किसी उपासक ने ठीक कहा है–

भजन

अजब हैरान हूँ भगवन्
तुम्हें क्यों कर रिझाऊँ मैं।
नहीं वस्तु कोई ऐसी
जिसे सेवा में लाऊँ मैं।।
करुँ किस तरह आवाहन
कि तुम मौजूद हो हरजा।
निरादर है बुलाने को
अगर घण्टी बजाऊँ मैं।।
लगाना भोग कुछ तुम
को ये इक अपमान करना है।
खिलाता है जो सब जग
को उसे कैसे खिलाऊँ मैं।।
तुम्हारी ज्योति से रोशन
हैं सूरज, चाँद और तारे।
महा अंधेर है तुम को
अगर दीपक दिखाऊँ मैं।।
भुजाएँ हैं, न गरदन है,
न सीना है, न पेशानी।
तू है निर्लेप 'नारायण'
कहाँ चन्दन लगाऊँ मैं।।
तुम्हीं व्यापक हो फूलों
में तुम्हीं हो मूरती में भी।
भला भगवान् पे भगवान्
को कैसे चढ़ाऊँ मैं।।

रामचन्द्र–हमारी समझ में भली प्रकार आ गया है कि ईश्वर के क्या गुण हैं। अब कृपा करके हमें बताइये कि उपासना करने की क्या आवश्यकता है ? इससे हम सब का किस प्रकार कल्याण होगा ?

स्वामी जी – ईश्वर की पूजा करने का आशय यह है कि हम ईश्वर की सत्ता और महत्ता का भान समस्त जगत् में कर सकें। हम को ऐसा ज्ञान हो जाए कि ईश्वर सभी चीज़ों और सब जगहों में है। कण–कण में उसकी सत्ता है, वह हमारे दिल के भीतर है इसलिये उसका नाम अन्तर्यामी है। ईश्वर की सृष्टि की ओर देखो। अपनी शरीर की बनावट की ओर देखो। तुम को हर वक्त याद रहेगा कि ईश्वर की कारीगरी का प्रकाश हर चीज़ में मौजूद है। थोड़े दिनों तक ऐसी विचारशक्ति के बढ़ने से मनुष्य में ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। उसे कोई चीज़ ईश्वर से ख़ाली दिखाई नहीं देती। उससे उसके चाल–चलन पर विशेष प्रभाव पड़ता है, वह किसी से भय नहीं करता क्योंकि वह ईश्वर को सदा अपने साथ समझता है। झूठ नहीं बोलता क्योंकि ईश्वर उसके दिल में है, उसके देखते झूठ कैसे बोला जाए ! वह चोरी नहीं करता क्योंकि ईश्वर उसे देखता है। यदि कभी उससे कोई पाप हो जाता है तो चुपचाप ईश्वर से क्षमा माँगता है और आगे को प्रतिज्ञा करता है कि मैं अब कभी ऐसा पाप नहीं करुँगा। देखो जो पूजा के लिये मन्दिरों में जाते और मूर्तियों को देवता समझते हैं वे मूर्तियों के सामने रहते हुए भी पाप करते हैं। यात्रियों को धोखा देते हैं। मूर्तियों की शकल बदल देते हैं और घोषणा करते फिरते हैं कि देवी रंग बदलती है। चोर देवताओं के ज़ेवर चुराकर ले जाते हैं, स्वयं पुजारी लोग भी मन्दिरों में स्त्रियों का सतीत्व भ्रष्ट करते पाये जाते हैं। कई पुजारी कृष्ण का रूप बनाकर स्त्रियों को ठगते और कृष्ण जैसे महात्मा का नाम बदनाम करते हैं, जो ईश्वर की उपासना करेगा उसका चाल–चलन तो उत्तरोत्तर अच्छा होता जाएगा इसलिये ईश्वर की उपासना की ठीक विधि यह है कि–

(1) सृष्टि की रचना और अपने शरीर की रचना को देखकर समझो कि ईश्वर महाज्ञानी, महा बलवान् और सब के घट–घट का वासी है।

(2) उसको हर जगह समझ कर पाप करने से बचो।

(3) अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करो, किसी प्राणी को न सताओ न धोखा दो।

(4) कभी चुपचाप एकान्त में बैठकर ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव का ध्यान किया करो। मनन करने से आत्मा की शक्ति बढ़ती है।

(5) नित्य प्रातःकाल और सायंकाल 'ओ३म्' नाम का जप करो और 'ओ३म्' के अर्थों पर विचार करो।

भजन

दो घड़ी भगवान् का ले नाम तू।
छोड़ कर दुनिया के सारे काम तू।। 1 ।।
दो घड़ी का ध्यान भी रंग लायेगा।
दे समय थोड़ा सुबह और शाम तू।। 2।।
अपने दिल को थाम कर आसन जमा।
मन की चंचलता को प्यारे थाम तू।। 3।।
त्याग कर आलस्य जा सत्संग में।
प्रेमरस का भक्तवर पी जाम तू।। 4।।
देख तेरे काम की है बात यह।
पायगा दुनिया में फिर आराम तू।। 5।।

नोट–जब अधिक उन्नति हो जाये तो सन्ध्या की विधि सीख कर दोनों समय सन्ध्या करनी चाहिये।

(देखो स्वामी दयानन्द जी की बनाई पंचमहायज्ञविधि)

'गंगा ज्ञान सागर' सम्पादक
प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु से साभार

संसार में सब से बुरी चीज़ अविद्या में फँस कर लोग जड़ पदार्थों को ईश्वर समझ बैठते हैं। अगर मैं किसी वृक्ष के ठूँठ को गुरू समझ लूँ और नित्य उठ कर उसको प्रणाम किया करूँ तो वह ठूँठ हमें विद्या तो न पढ़ा सकेगा। इसी प्रकार यदि मैं अज्ञान से किसी पत्थर की मूर्ति को ईश्वर या देवता मान लूँ तो वह मुझे कुछ ज्ञान नहीं दे सकता। जो मूर्ति पूजा में लगे रहते हैं उनसे यह अज्ञान मरण पर्यन्त भी नहीं छूटता।

गतांक से आगे...

प्रखर राष्ट्रवादी ऋषि दयानन्द की राजनैतिक अवधारणा

● जगदीश आर्य

11. मंत्रियों की संख्या एवं गुण

मंत्रियों की संख्या कितनी हो, इस पर स्वामीजी का स्पष्ट निर्देश है। "मंत्रीमंडल (कैबिनेट) में कम से कम आठ उत्तम, धार्मिक व चतुर सचिव रखे।" (स. प्र. छठा समु.) (युगानुकूल संख्या में परिवर्तन अपेक्षित है–ले.)

गुण–(क) स्वदेशोत्पन्न हों, (ख) वेदादिशास्त्रज्ञ हों (ग) कुलीन हों (घ) शूरवीर हों (ङ) ऊँचे लक्ष्य वाले हों (च) पक्षपात रहित हों।

अन्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति

(1) मुख्य सेनापति (2) वाणिज्य मंत्री (3) गणकर्म अर्थात् लेखा–निरीक्षक (4) वनरक्षक (5) पशु– पालन पदाधिकारी (6) मनोरंजन पदाधिकारी। इस विभाग के अन्तर्गत, नृत्य, संगीत, वाद्य, नाट्य आदि संकाय रहें। ये सभी पदाधिकारी पक्षपात रहित, दृढ़चरित्रवान्, वेदादिशास्त्र के ज्ञाता, ऊँचे लक्ष्य वाले एवं जनता के प्रति समर्पित भावना वाले होने चाहिये।

12. दण्डनीति

स्वामीजी ने दण्ड नीति का यह आधार माना है–"न्याय युक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है। जो इसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ?" (स. प्र., छठा समु.)

'मनु' का प्रमाण देकर वे कहते हैं:–

"दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्डः स्वमभिरक्षति दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दंडधर्मं विदुर्बुधा;"
"स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।"
(मनु. 7–19, 17)

जो दण्ड है वही पुरुष, राजा वही, न्याय का प्रचारक है, शासक है, वहीं चार वर्णों, आश्रमों एवं धर्म का प्रतिभूः अर्थात् जामिन है। दण्ड के प्रयोग के लिये विवेक की आवश्यकता है। ऐसा न हो जाए कि निरपराधी को दण्ड मिल जाए। दंडित व्यक्ति के प्रति प्रतिशोध की भावना नहीं होनी चाहिये।

आधुनिक समय में दण्ड के तीन भेद किये गये हैं–(1) प्रतिशोधक (2) भयावह (3) सुधारक ऋषि दयानन्द ने भी दण्ड के तीन भेद माने हैं। यथा–वाणी का दण्ड, अर्थ दण्ड, और शारीरिक दण्ड।

'वाणी का दण्डः' अपराधी को समझाने बुझाने से लेकर सार्वजनिक निन्दा करनी चाहिये यह वाणी का दण्ड है।

अर्थ–दण्डः–जुर्माना किया जाए। आवश्यकता पड़ने पर उसकी चल सम्पत्ति को नीलाम किया जाए।

शारीरिक दण्डः–इतने पर भी अपराधी अपराध करने से बाज न आवे तो उसे 'केलिंग' से लेकर उसका सिर काटने तक की सजा दी जाए। ऋषि दयानन्द की दण्ड नीति मनोवैज्ञानिक है।

स्वामी ने दण्ड देने में लिंग–भेद नही माना है। व्यभिचारिणी स्त्री को कड़ा दण्ड देने का निर्देश दिया 'राजा भगवान् का रूप है, अतः उसे दण्ड न देना उनका कहना है कि जब राजा पुण्यात्मा, स्वामीजी ने दण्ड देने में लिंग–भेद नहीं माना है। राजपुरुषों को दण्ड संसद् की ओर से देना चाहिये। इस भावना का स्वामीजी ने प्रबल शब्दों में विरोध किया है। महापुरुष एवं नेता होते हुए भी अपराध करता है, यदि उसे दण्ड न दिया जाए तो साधारण व्यक्ति को उसके अपराध पर क्यों दण्ड दिया जाए ?

दण्ड–विधान में फाँसी की सजा होया न हो, इस पर आज कल एक विवाद खड़ा हुआ है। कुछ चिन्तकों का कहना है कि मनुष्य जब किसी प्राणी को बनाता नहीं है तो उसे वध करने का क्या औचित्य है। ऐसे लोगों के विचार में 'सुगमदण्ड देना उचित है–मानवीय है।' ऋषि दयानन्द के युग में भी ऐसा ही प्रश्न उठता था। इस प्रश्न को स्वामीजी ने पूर्व पक्ष में उठाया है। इसका समुचित समाधान करते हुए वे लिखते हैं– "सच पूछो तो सुगमदण्ड यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सब के भाग में न आवेगा और जो सुगमदण्ड कहते हो वह करोड़ों गुना अधिक होने से करोड़ों गुना कठिन होता है। क्योंकि जब बहुत मनुष्य दृष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा–थोड़ा सा दिया जाए तो बहुत देना पड़ेगा"। (स. प्र. छठा समु.)

यहाँ उन्होंने गणित के आधार पर कठोर दण्ड को भी 'सुगम' बतलाया है।

दयानन्द ने सब को एक ही प्रकार के दण्ड देने की व्यवस्था उचित नहीं मानी है। प्रशिक्षितों की अपेक्षा शिक्षितों को अधिक दण्ड। इसी प्रकार राजा और प्रजा के दण्ड में भी भेद किया है। राजा या राजपुरुयों के अपराध पर उसे प्रजा की अपेक्षा अधिक दण्ड देना चाहिये।

ऋषि का अभिप्राय स्पष्ट है, दण्ड के द्वारा अपराध कर्म को रोकता है–अतः व्यक्ति को दण्ड उसके व्यक्तित्व के आधार पर ही देना न्यायसंगत है।

13. टॅक्स (कर) नीति

राज्य की आमदनी का स्रोत कर व्यवस्था है। स्वामीजी के मत में 'अर्थ' वह है जो धर्म से प्राप्त किया जाए। अतः कर–संग्रह की नीति ऐसी न हो जो प्रजा को कष्ट दें। जैसे 'भ्रमर' थोड़ा–थोड़ा रस ग्रहण करता है, जोक और बछड़ो–शनैः शनैः रस प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार प्रजा टैक्स लेते समय इसका ध्यान आवश्यक है कि प्रजा को उससे कष्ट न हो। बगुला का उदाहरण देकर स्वामीजी राजाओं को निर्देश देते है कि अर्थ–संग्रह पर अपना ध्यान केन्द्रित रखना चाहिये।

भारत की अर्थ–व्यवस्था में गो–सम्पदा का स्थान सर्वोपरि है–अतः उसके रक्षण एवं वृद्धि पर राजा समुचित ध्यान दे।

करों की चोरी करने वालों को दण्ड देने की व्यवस्था है–उनसे भी दण्ड के रूप में द्रव्य ग्रहण करें। राज्य की अर्थ–व्यवस्था में केवल कृषि का ही योगदान काफी नहीं है–अतः देश के कला–कौशल, उद्योग–धंधों को बढ़ाने का भी निर्देश दिया है।

व्यापार के माध्यम से देश की अर्थ–व्यवस्था सुदृढ़ हो, इसे भी स्वामीजी ने स्पष्ट किया है। व्यापारियों को राज्य की ओर से सुविधा मिलनी चाहिये, ऐसा उनका अभिमत है।

राज्य के कर्मचारियों की सेवा–निवृत्ति होने पर उनके पेंशन की भी व्यवस्था हो, ऐसा ऋषिवर का विचार है। राष्ट्र की अर्थ–व्यवस्था समुचित रूप से सुदृढ़ हो, इस सम्बन्ध में दयानन्द ने कुछ निश्चित सिद्धान्त स्थिर किये हैं।

राजस्व तथा अन्य करों से प्राप्त राष्ट्रीय आय के विभाजन का सिद्धान्त

राजस्व तथा अन्य साधनों से प्राप्त राष्ट्रीय आय के विभाजन का भी सिद्धान्त दयानन्द ने स्थिर किया है। यथा–"राज्य की सम्पूर्ण आय में 1/10 धर्मादि काम के लिये रखें। धर्मादि से प्राशय न्याय एवं शिक्षा– विभाग से है। आपत्काल के लिये भी धन की व्यवस्था रखें। राज्य की आय में से नवांश में से दो भाग स्थिर– कोष, दो अंश राज्यकुल, तीन अंश सेना विभाग, एक अंश कृषि, शिल्प आदि में लगावें। (द्रष्टव्य–पत्र सं. 459)

14. युद्ध नीति

आर्यसमाज के सातवें नियम में स्वामीजी ने "सबसे प्रीतिपूर्वक वर्त्तने" के लिए कहा है। प्यार भी अहिंसा का ही एक रूप है। जहाँ तक सम्भव हो अपने पड़ोसी राष्ट्र से प्रीतिपूर्वक ही वर्त्तना चाहिये। परन्तु अगर पड़ोसी राष्ट्र अपनी दुष्टता से बाज नहीं आता है तो वहाँ पर स्वामीजी ने (ऋग्वेद 1.3.18.2) के मन्त्र "युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।" अर्थात् राष्ट्र की सेना बलवती हो, ताकि दुष्ट पड़ोसी कभी भी तुम्हारे देश पर हावी न हो उठे। युद्ध का उद्देश्य अन्याय को नष्ट करना है। स्वामीजी ने अनिवार्य युद्ध नहीं माना है। परन्तु शत्रु देश से अपनी रक्षा हेतु युद्ध भी अपरिहार्य है।

युद्ध की शक्ति का केन्द्रीयकरण होना चाहिये, परन्तु अलग–अलग सेनाओं के लिए उसका विकेन्द्रीयकरण भी होना चाहिये। स्थल, नभ एवं आकाश सेनाओं के लिए अलग–अलग सेनापति चाहिये –पर उन सभी का नेतृत्व प्रधान सेनापति करे।

रक्षा व्यवस्था

रक्षा–व्यवस्था के दो भेद हैं, आन्तरिक रक्षा–व्यवस्था और बाह्य–रक्षा व्यवस्था। आन्तरिक व्यवस्था– देश के भीतर शान्ति स्थापित रहे। डाकुओं–चोरों तस्करों से प्रजा सुरक्षित रहे, इस सम्बन्ध में राजा के कर्त्तव्य–बोध का ज्ञान स्वामीजी ने कराया है। राष्ट्र का आरक्षी–बल काफी चुस्त रहे वह आधुनिक उपकरणों से लैस रहे–ऐसा ऋषि का अभिमत है।

बाह्य सुरक्षा व्यवस्था

बाहरी शत्रु राष्ट्रों से मित्रता, समझौता एवं भद्र व्यवहार वर्तना चाहिये। शत्रु राष्ट्र को मित्र राष्ट्र बनाना उद्देश्य रहना चाहिये। गुट निरपेक्षता की भावना सफल तभी हो सकती है, जब आपस में समभाव रखा जाए। उदासीनता गुट निरपेक्षता नहीं है। गुप्तचर विभाग सुदृढ़ रहे इस पर ऋषि दयानन्द ने पर्याप्त बल दिया है।

15. शासन में विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासनव्यवस्था में विकेन्द्रीयकरण का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। एक व्यक्ति के हाथ में सत्ता केन्द्रित न रहे बल्कि तीन संसदों द्वारा शासन हो। ग्राम पंचायतें ग्राम व्यवस्था में सक्षम रहें। नगरों की व्यवस्था के लिए नागरिक परिषदों (आज की भाषा में 'कॉरपोरेशन' की आवश्यकता पर बल दिया है)।

16. विदेश नीति

पड़ोसी राष्ट्र के साथ तीन प्रकार का सम्बन्ध, यथायोग्य रखना चाहिये। मित्र भाव, शत्रु भाव और उदासीन भाव। धार्मिक राजा के साथ मित्र भाव, दुष्ट राजा के साथ शत्रु भाव, एवं जो राज्य मित्र भाव भी न रखता हो और शत्रुता भी

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

गतांक से आगे...

भारतीय नवजागरण और स्वामी दयानन्द सरस्वती

● **डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री**

विवाह सम्बन्धी कुछ नियम भी दयानन्द ने बनाए। विवाह की पद्धति में जो बुराइयाँ प्रविष्ट हो गई थीं, अधिकांशतः वे ही स्त्रियों की अधोस्थिति के लिए जिम्मेदार थीं। बाल–विवाह, बहुपत्नी–प्रथा, विधवा–पुनर्विवाह का निषेध, दहेज और जाति–उपजाति के संकीर्ण दायरे में विवाह आदि अनेक बुराईयाँ हिन्दुओं में थीं। बाल–विवाह के कुछ दृष्टान्त हैं–दादा भाई नौरोजी का विवाह 11 वर्ष की आयु में 7 वर्षीय गुलाबी के साथ हुआ था। महात्मा गाँधी और डॉ. राजेद्र प्रसाद का विवाह 13 वर्ष की आयु में हुआ था। ब्राह्मसमाज के संस्थापक राममोहन राय के 10 वर्ष की अवस्था तक उनके तीन विवाह हो चुके थे। बहुपत्नी–प्रथा के कारण उनके पिता श्री रमाकान्त राय के भी तीन विवाह हुए थे। दयानन्द ने बाल–विवाह तथा बहु–विवाह के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया और अपने समर्थन में लोकमत तैयार किया। उन्होंने विवाह को तीन वर्गों में बाँटा – (1) निकृष्ट विवाह (2) मध्यम विवाह (3) श्रेष्ठ विवाह। निकृष्ट विवाह वे थे जो 16 वर्ष कन्या और 25 वर्ष के युवक के बीच हो। इसी प्रकार मध्यम विवाह और श्रेष्ठ विवाह के लिए युवती क्रमशः 18–20 तथा 24 की तथा पुरुष की आयु 30–40 वर्ष व 48 वर्ष के बीच हो। बाल–विवाह की प्रथा को दूर करने के लिए भारत स्त्री मण्डल और महिला मिलाप समिति ने बड़ा काम किया। दयानन्द ने विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने उन विधवाओं का पुनर्विवाह करने का समर्थन किया जो कुंठाओं से ग्रस्त होकर भ्रष्ट हो जाती थीं। अतः सामाजिक नियमानुसार विधवा या विधुर एकाकी जीवन न जी सकते हों तो उन्हें पुनर्विवाह कर लेना चाहिए। **यहाँ विधवा पुनर्विवाह अधिनियम** का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जो **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** के प्रयत्नों से 1850 में पास हुआ था। यह कानून तब तक किताबों में ही बन्द रहा जब तक कि आर्यसमाज मैदान में नहीं आया और स्वामी दयानन्द के नेतृत्व में उसने विधवा पुनर्विवाह आन्दोलन को नया संदेश नहीं प्रदान किया। प्रार्थना समाज (1867) के संस्थापक महादेव गोविन्द रानाडे अपनी पहली पत्नी के स्वर्गवास के पश्चात् अपनी इच्छा और भावना के विरुद्ध पिता के दुराग्रह के कारण दूसरा विवाह किसी विधवा से नहीं अपितु एक 11 वर्षीया कुमारी बालिका से किया। विधवाश्रमों की स्थापना की गई और विधवाओं का विवाह कराने वाली समितियाँ गठित हुईं जिनका उद्देश्य इस पक्ष में लोकमत तैयार करना और समुचित सुविधायें उपलब्ध कराना था। स्वामीजी के एक शिष्य पंजाब के श्री गंगाराम ने विधवाओं के लिए बहुत धन प्रदान किया और सर गंगाराम ट्रस्ट के तत्वावधान में भारत के सभी प्रमुख केन्द्रो में विधवाश्रमों की स्थापना की गई। वैधव्य की स्थिति हिन्दू समाज में बहुत–सी स्त्रियों के लिए बहुत बड़ी यंत्रणा थी। उनके ऊपर घरों में नियंत्रण थोपे जाते थे, उनसे तंग आकर अनेक विधवायें मुसलमान या ईसाई हो जाती थीं। आर्यसमाज वह पहली भारतीय संस्था थी जिसने अनाथालय और विधवाश्रम स्थापित किये। पहला हिन्दू अनाथालय स्वामीजी के जीवनकाल में ही फिरोजपुर में खोला गया जहाँ लड़के–लड़कियों को शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था थी। आर्यसमाज के तत्वावधान में उत्तर भारत के अनेक नगरों में इसी प्रकार के अनेक अनाथालय चलाये गए। इसी प्रकार पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और विहार में **सर गंगाराम ट्रस्ट** की ओर से बड़े–बड़े नगरों में **विधवाश्रम** खोले गए। **गंगाराम, देवीचन्द और लाला लाजपत राय** ने लोगों से विनती की कि वे अनाथ बच्चों और विधवाओं के प्रति करुणा का भाव रखें। "प्रकाश" नामक पत्रिका के सम्पादक महाशय कृष्ण ने विधवाओं के अधिकारों की माँग करते हुए उनके लिए विधवाश्रम खोलने की अपील की।

दयानन्द स्त्रियों की स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। उन्होंने और आर्यसमाज ने पर्दा प्रथा भंग करके स्त्रियों को बाहर निकलने की आजादी प्रदान की। राजा राममोहन राय के सहयोग से लार्ड विलियम वेंटिक ने 1834 में एक कानून बनाकर मानवीय आधार पर सती–प्रथा पर रोक लगा दी थी। कट्टर पंथी हिन्दुओं को यह कानून धार्मिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप लगता था। पण्डितों का मत था कि धर्म ग्रन्थों में सतीप्रथा का विधान है। स्वामी दयानन्द ने सिद्ध कर दिया कि सतीप्रथा के पक्ष में पण्डितों द्वारा दिये जाने वाले सब शास्त्र–वचन झूठे हैं और वेदों में ऐसी अमानुषिक प्रथा का कोई समर्थन नहीं किया गया है। **{वही, पृष्ठ–105–107}**

14. राष्ट्रभाषा आन्दोलन के प्रवर्तक–यह एक स्वयं सिद्ध तथ्य है कि किसी विचारधारा को जन–जन तक पहुँचाने के लिए लोक भाषा का सहारा लेना आवश्यक होता है। स्वामी दयानन्द की मातृभाषा गुजराती थी और वे संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् थे। देश में धार्मिक जागरण फैलाने तथा समाज–सुधार की दुन्दुभि बजाने के लिए बाबू केशवचन्द्र सेन की सलाह पर स्वामी जी ने उत्तर भारत की सर्वमान्य भाषा हिन्दी का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया, जिसे वे आर्यभाषा कहते थे। उस समय साधारण तौर पर देश की अधिकांश जनता इस हिन्दी भाषा को बोल तथा समझ लेती थी। हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के समीक्षक लाला भगवानदीन तथा हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर सर्वप्रथम लेखनी उठाने वाले प्रो. रामदास गौड़ के संयुक्त सम्पादन में लिखी गई पुस्तक हिन्दी भाषासार में ऋषि दयानन्द की हिन्दी सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए लिखा गया है–"जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी विद्वान् संन्यासीं दयानन्द ने राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार किया। अपने ग्रन्थ भी हिन्दी में ही लिखे। हिन्दी की उन्नति और प्रचार को, आर्यसमाज का, जिसके वे प्रवर्त्तक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया। अकेले इन स्वामीजी ने हिन्दी का जितना उपकार किया, हमारा अनुमान है कि अनेक सुसंगठित संस्थाओं ने भी मिलकर नहीं किया। **{"हिन्दी भाषा सार" पृ. 62 (प्रकाशक– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)}** हिन्दी समीक्षा के प्रारम्भिक युग के महारथी मिश्रबन्धु स्वामी दयानन्द की हिन्दी से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने कालजयी ग्रन्थ "मिश्रबन्धु विनोद" में हिन्दी साहित्य के वर्तमान काल के आरम्भ को दयानन्द काल के नाम से अभिहित किया। **{मिश्रबन्धु विनोद, भाग–3}** बाद में हिन्दी साहित्य के इतिहास को वैज्ञानिक तथा प्रवृत्तिमूलक आधार पर प्रस्तुत करने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आर्यसमाज की स्थापना की पृष्ठभूमि तथा स्वामी दयानन्द की हिन्दी सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए लिखा– "पैगम्बरी एकेश्वरवाद की ओर नवशिक्षित लोगों को आकर्षित होते देखकर ऋषि दयानन्द वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खड़े हुए और संवत् 1920 वि. (1863 ई.) से उन्होंने अनेक नगरों में घूम–घूम कर व्याख्यान देना आरम्भ किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये व्याख्यान देश में बहुत दूर तक प्रचलित साधु हिन्दी भाषा में ही होते थे। स्वामीजी ने अपना ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश तो हिन्दी या आर्यभाषा में प्रकाशित किया ही, वेदों के भाष्य भी संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में किये। स्वामीजी के अनुयायी हिन्दी को आर्यभाषा कहते थे। स्वामीजी ने 1932 वि. में आर्यसमाज की स्थापना की और सब आर्यसमाजियों के लिए हिन्दी या आर्यभाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्यसमाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ। **{रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (प्रका.–काशी नागरी प्रचारिणी सभा)}** स्वामीजी के निधन के 10 वर्ष पश्चात् जब 1893 में 'काशी नागरी प्रचारणी सभा' की स्थापना हुई तो इसके संस्थापकों में एक पण्डित रामनारायण मिश्र दृढ़ आर्यसमाजी थे तथा इस सभा का पुस्तकालय 'आर्यभाषा पुस्तकालय' स्वामीजी के अनुयायी ठाकुर गदाधर सिंह द्वारा प्रदत्त निजी पुस्तक संग्रह से आरम्भ किया गया था। **{भवानीलाल भारतीय, ऋषि दयानन्दः सिद्धान्त और जीवनदर्शन, पृ0 287, 2006 ई.}**

15. स्वामी दयानन्द का लेखन कार्य–मौखिक भाषणों, शास्त्रार्थों और विचार– चर्चाओं के अतिरिक्त स्वामीजी को जो अवकाश मिलता था, उसका उपयोग वे ग्रन्थ–लेखन कार्य में करते थे। स्वामीजी ने प्रायः सम्पूर्ण लेखन कार्य अपने जीवन की अन्तिम दशाब्दी में किया। इस स्वल्प काल में लगभग 25 ग्रन्थ स्वयं लिखे और 35 ग्रन्थ अपने निरीक्षण में तैयार कराये। इन ग्रन्थों में यजुर्वेदभाष्य और ऋग्वेदभाष्य जैसे विशालकाय ग्रन्थ भी हैं। स्वामीजी ने जो ग्रन्थ स्वयं लिखे वे लगभग 15 सहस्र पृष्ठों में छपे हैं। स्वामीजी ने 10 वर्ष के स्वल्प काल में वाणी और लेखनी द्वारा जो कार्य किया वह मात्रा और प्रभाव की दृष्टि से अतीत के समस्त महापुरुषों को अतिक्रमण कर गया। **{युधिष्ठिर मीमांसक, ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास, पृ० 6–7 (प्रकाशक–रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत–हरयाणा, 1983 ई.)}** ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की भाषा खड़ी बोली है। उसमें यद्यपि आज जैसी व्याकरण–शुद्धता भले ही न मिले, तथापि वह ओजपूर्ण, व्यङ्ग–प्रबलता और प्रवाह से भरपूर है, पण्डिताऊपन उसमें नहीं है। भाषा में अविवेकपूर्ण कृत्रिम संस्कृत–निष्ठता की प्रवृत्ति का भी अभाव है। उसमें सरलता है, प्रसाद है और प्रवाह है, जो भाषा के सर्वोपरि गुण माने गए हैं। ***क्रमशः***

अध्यापक आवास, स्टेशन रोड, अमेठी, (उत्तरी–प्रदेश)–227405

भिक्षां देहि

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

(भिक्षुक से भगवान तक का सफर)

"पंडितजी ! आप कौन सी पुस्तक पढ़ रहे हैं?"

"मैं 'नारद परिव्राजकोनिषद' पढ़ रहा हूँ?"

"इस पुस्तक को पढ़ने का विशेष कारण ?"

"हाँ, इसका एक ऐसा श्लोक है जो मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करता है।"

"उस श्लोक से हमें भी परिचित करवा दीजिए।"

"सुनिए–

अजिह्व षंडकः पंगुरंधो बधिर एव च। मुग्धश्च उच्यते भिक्षु षडभिरेतैर्न संशयः।।

"अब इसका अर्थ भी समझा दीजिए।"

"अर्थात् गूंगा, नपुंसक, पंगु, अंधा, बहरा, मूर्ख और भिक्षु ये सब स्वर्ण या मुक्ति के अधिकारी हो सकते हैं।"

"आप उल्टी गंगा क्यों बहा रहे हैं ? हो सकता है जिन्हें नरक में भी जगह न मिले, उन्हें आप स्वर्ग का पासपोर्ट दे रहे हैं? अच्छा, यह बताइये कि आप भिक्षुक (भिखारी) को स्वर्ग क्यों भेजना चाहते हैं?"

"पहले तुम यह बताओ कि तुम भिक्षुक कहते किसे हो?"

"जो अत्यन्त दीन–हीन, वस्त्र–हीन, भूखा–प्यासा, फटे–पुराने कपड़े पहनने वाला हो, कभी भीख का अन्न खाता हो, जो केवल डाँट खाता हो, मेरे हिसाब से वही भिखारी है।"

"अपनी सोच बदलो महाशय ! भिक्षु बनने का प्रयास करना, अवनति का नहीं, उन्नति का सूचक है। यह महान बनने का शुभारम्भ है।"

"लगता है, आपने भाँग–चढ़ा ली है।"

"मैने भाँग नहीं चढ़ाई, आपका मानसिक संतुलन बिगड़ गया है।"

"तो बना दीजिए, भिक्षुक को भगवान्! पता चल जायेगा कि कौन सही और कौन गलत है?"

"सुनो ध्यान से, संस्कृत साहित्य में संन्यासी के लिए भिक्षु शब्द का भी प्रयोग हुआ है क्योंकि वह भिक्षावृत्ति के द्वारा जीवन–यापन करता है।"

"शब्दों में मत उलझाइये कोई प्रमाण दीजिए।"

"क्या भगवान बुद्ध भिक्षा माँगकर जीविकोपार्जन नहीं करते थे। क्या उन्होंने अपने हज़ारों शिष्यों के लिए भिक्षु (भिक्खु) शब्द का प्रयोग नहीं किया था? क्या भगवान राम ने वनवास के दिनों में भिक्षावृत्ति नहीं अपनाई थी। क्या भगवान कृष्ण ने अपने मित्र सुदामा के साथ गुरुकुल में पढ़ते हुए भिक्षा के द्वारा प्राप्त चने नहीं खाये थे ? क्या महर्षि दयानन्द ने भूख के कारण ज्वालापुर में एक किसान से एक बैंगन माँग कर अपनी भूख शान्त नहीं की थी ? आजकल भी गुरुकुलों में यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर ब्रह्मचारी **'भिक्षां देहि'** कहकर माताओं से भिक्षा माँगते हैं। "

"पंडित जी ! चलो हमने आप की बात मान ली, लेकिन आप तो गूँगे व्यक्ति को भी स्वर्ग (सुख विशेष) का टिकट देने के लिए उतावले हो रहे हैं।"

"क्यों न होऊँ ? संस्कृत में गूँगे के लिए अजिह्व' शब्द का प्रयोग भी हुआ है। इसका अर्थ होता है जिसकी जीभ न हो। अथवा जो बोल न पाता हो, अर्थात् गूँगा हो। "जिसकी जीभ होगी, वह स्वाद के पीछे दौड़ेगा, स्वादिष्ट पदार्थों को खाने में जीवन बर्बाद करेगा अथवा गाली–गलौज या कठोर वचन बोलने में जिह्वा (वाणी) का दुरुपयोग करेगा। पर जो व्यक्ति स्वाद के पीछे नहीं भागेगा, कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करेगा उसे ही अजिह्व' (गूँगा) कहा जायेगा। क्या उसके लिए स्वर्ग का द्वार नहीं खुलेगा?"

"आपने तो 'पंगु' को भी हिमालय पर चढ़ा दिया, जो एक कदम भी नहीं चल सकता वह स्वर्ग की सीढ़ियाँ कैसे चढ़ेगा?"

"चढ़ेगा, जरूर चढ़ेगा। जिसके पैर होंगे, वह जगह–जगह धनोपार्जन, मनोरंजन या दुष्कृत्यों के लिए भटकता रहेगा लेकिन जो व्यक्ति पंगु के समान एक स्थान पर टिककर साधना करेगा क्या उस पर ईश्वर की कृपा नहीं होगी?"

"आपने तो अंधे व्यक्ति को भी मुक्ति का ठेका दे दिया?"

"पर वह ठेका आपके जैसे आँख वाले को नहीं मिल सकता। मेरी बात का जवाब दीजिए, यदि आपको कोई अश्लील या कुत्सित दृश्य दीख जाए तो क्या आप उस दृश्य से आँखें नहीं हटा लेंगे? क्या उस दृश्य के प्रति आप अन्धावत् व्यवहार नहीं करेंगे? जो सांसारिक विषय–वासनाओं के प्रति अंधे जैसा व्यवहार करता हो अर्थात् उनको अनदेखी करता हो और संसार में परमात्मा की छवि के दर्शन करता हो, क्या ऐसा अंधा व्यक्ति किसी दृष्टि वाले व्यक्ति से कम है? क्या प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द जी किसी महापुरुष से कम महान थे?"

"पंडित जी ! आपने तो बधिर (बहरा) के भी कान खोल दिये। उसको भी स्वर्ग का सारा संगीत सुना दिया।"

"हाँ, वह संगीत आपकी किस्मत में नहीं। कल्पना कीजिए, आपकी पत्नी आपको ज़ोर–ज़ोर से गाली देने लगे, भला–बुरा कहने लगे तो आप क्या करेंगे? आप बहरे बन कर वहाँ से भाग जायेंगे। इसी प्रकार जो व्यक्ति सांसारिक व्यक्तियों के कठोर, हृदय विदारक, वचनों के प्रति बहरे के समान व्यवहार करते हो, क्या आपको उसके महान कहलाने में संदेह है?"

"आपने तो मूर्ख को भी ताज पहना दिया।"

" वह ताज आपकी किस्मत में नहीं। संस्कृत में कहा गया है–**'जानन्नपि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्'** अर्थात् बुद्धिमान व्यक्ति सब कुछ जानते हुए भी सांसारिक भावनाओं या वस्तुओं के प्रति जड़ (मूर्ख) बन व्यवहार करे। वह संसार के भोगविलासों या दुर्भावनाओं के प्रति ऐसा व्यवहार करे कि मैं मूर्ख (अज्ञानी) हूँ। मैं इसको जानता ही नहीं।"

"पंडित जी ! क्या कहने आपके! आपने नपुंसक व्यक्ति को भी अपनी श्रेणी में बैठा दिया, स्वर्ग के सपने दिखा दिये।"

"जो सपने आप भी नहीं देख सकते, वे सपने यदि नपुंसक देख लें तो वे भाग्यशाली हैं। सुनिये, यदि कोई पुरुष होगा तो उसका नारी सौंदर्य के प्रति आकर्षण होगा और यदि कोई नारी होगी तो उसका पुरुष के बलिष्ठ, बलवान शरीर के प्रति मोह होगा। आध्यात्मिक दृष्टि से ये दोनों स्थितियाँ उचित नहीं कही जा सकती। जो पुरुष या स्त्री होने पर भी आध्यात्मिक उन्नति के लिए सब के साथ नपुंसक जैसा व्यवहार करे, क्या आप उसे महान नहीं कहेंगे?"

"पंडित जी ! आपने मेरे तरकश के सारे तीर व्यर्थ सिद्ध कर दिये। आपने मेरा चिन्तन ही बदल दिया। शब्दों के अर्थ कैसे बदल दिए जाते हैं, यह कोई आप से सीखे। क्या आप मुझ से कुछ पूछना चाहेंगे पंडित जी!"

"हाँ, मैं केवल आपसे एक ही प्रश्न पूछना चाहूँगा।"

"पूछिये"

"तुम भिक्षुक, नपुंसक, पंगु, बधिर, अंधे, गूंगा और मूर्ख में से क्या बनना चाहेंगे?"

पंडित जी, अब तो मैं सब कुछ बनना चाहता हूँ।

क्या मेरी कामना पूर्ण होगी?"

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो. 9639149995

☞ पृष्ठ 04 का शेष

प्रखर राष्ट्रवादी ऋषि...

न रखता हो, ऐसे राष्ट्र के साथ उदासीन (तटस्थता नीति) भाव रखे। मित्र राष्ट्र से आशय है, जिस राजा की समान नीति हो, जो सद्भावना रखता हो। सभाध्यक्ष ऐसा प्रयत्न करे कि विदेशी राजाओं के मित्र, शत्रु एवं उदासीन राष्ट्रों के साथ मोह में न फँसे अर्थात् मित्र राष्ट्र के मोह में इस प्रकार न फँसे जिससे मित्र राष्ट्र अपनी इच्छानुसार चला सकें–(स. प्र. छठा समुल्लास)।

17. चक्रवर्ती राज्य अर्थात् विश्व–संघ की कल्पना

ऋषि दयानन्द ने एक विश्व–संघ, (आज की भाषा में राष्ट्र संघ) की परिकल्पना की है। उनका कथन है कि "बीस ग्रामों का अधिपति बीस ग्रामों के वर्तमान को, शतग्रामाधिपति को नित्य प्रति निवेदन करें। वैसे सौ– सौ ग्रामों के पति सहस्राधिपति ग्रामों के स्वामी को प्रतिवेदन दिया करें। बीस–बीस ग्रामों के पाँच अधिपति सौ– सौ ग्रामों के अध्यक्ष को और वे सहस्र सहस्र के दस अधिपति, और दस सहस्र के अधिपति लक्ष ग्रामों की राज– सभा को प्रतिदिन जनाया करें। और वे सब राजसभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज सभा में सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें।" (स. प्र. छठा समु.)

राष्ट्रीय भावना में स्वदेशी का आग्रह एवं एक राष्ट्रभाषा की परिकल्पना स्वामी दयानन्दजी ने उस समय की थी जब नेशनल कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था।

शासनप्रणाली में एक तन्त्र की चुनौती देने वाले इस सन्त ने जनतन्त्र की केवल मौखिक व्याख्या ही नहीं की बल्कि अपने द्वारा स्थापित आर्यसमाज की आधारशिला भी प्राचीन जन तन्त्र के आधार पर रखी। ऋषि दयानन्द की जनतान्त्रिक प्रणाली में जनता ही सर्वस्व है, उसे ही सर्वोच्च अधिकार है। आधुनिक समय में भारत में जो जन–तन्त्र प्रणाली है, वह बहुत दोषपूर्ण है। इस जन–तन्त्र में केवल 'तन्त्र' है–'जन' शून्य है।

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासन व्यवस्था ही किसी देश की सर्वश्रेष्ठ प्रशासन–प्रणाली है। इसमें किंचित भी सन्देह नहीं।

'महर्षि दयानन्द निर्वाण शती स्मृति ग्रन्थ' से साभार

गतांक से आगे...

आर्यसमाज दिग्दर्शन

● भद्रसेन

धर्मवीर–इसके विस्तार का कोई अन्त नहीं, अतः दूसरा मन्तव्य बताइए।

आर्यसमाज का दूसरा मूलमन्तव्य है–**धर्म, जो कि अच्छे आचरण का नाम है। सभी यह स्वीकार करते हैं** कि नदी को सरलता से पार करने के लिए जैसे पुल या नौका सहायक होती है ऐसे ही जीवन नदी को तरने के लिए धर्म नौका का काम करता है। {**धर्म एवं प्लवः। महाभारत वन पर्व 32,22**} धर्म का अर्थ है धारण, पालन और इसका फल है–सुख। अतः जिन बातों के अपनाने से सुख मिलता है, वही धर्म है, जैसे कि आपस में सही बोलने और परस्पर के सम्बन्धों को सचाई से निभाने पर सुख होता है।

सभी धर्म वाले यह स्वीकार करते हैं कि धर्म का ही दूसरा नाम सचाई है अतः व्यक्ति को सच्चा–सुच्चा बनाना ही धर्म का उद्देश्य है। धर्म के पूजा–पाठ आदि कर्म–काण्ड सड़क के बोर्डो की तरह सही रास्ते की ओर संकेत करने के लिए ही हैं। **'पर हित सरिस धर्म नहीं भाई'** ही धर्म की पहचान है अतः जिन बातों से अधिक से अधिक का भला होता हैं, वे सच्चाई, ईमानदारी, भलाई, स्नेह, सहयोग आदि बातें ही असली धर्म है।

लेखराम – श्रीमान जी ! आप तीसरा मूलमन्तव्य किसको कहते हैं ?

प्राध्यापक–आर्य समाज का तीसरा मूलमन्तव्य हम **'मानव जाति की एकता'** को कह सकते हैं। क्योंकि जगत् का कर्त्ता परमेश्वर जब सब का पिता है, तो एक पिता की सन्तान होने से स्वतः सभी मनुष्य एक से सिद्ध हो जाते हैं। हम सब मानवों के शरीर एक ही 'माटी के भाण्डे या कुदरत के बन्दे' हैं। सभी के शरीर, उसकी इन्द्रियाँ और उनका अपना–अपना कार्य एक ढंग का ही है। तभी तो सभी के खून का रंग लाल और हड्डियाँ सफेद हैं, सभी के दिलों में दूसरों से सच्चाई, ईमानदारी, भलाई, स्नेह, सहयोग की एक सी पहचान ही झलकती है। सभी मानव सुख, शांति पाने के लिए सोचते और सब कुछ करते हैं। उनके रूप, रंग, जात–पात का भेद कोई अन्तर नहीं डालता अतः मानव जाति में प्राप्त होने वाली ये एक सी बातें 'मानव जाति की एकता' को ही परिपुष्ट करती हैं।

अतः आर्यसमाज रूप रंग, जन्मगत जात, देश, धर्म भाषा आदि के भेद से मानव–मानव में भिन्नता नहीं मानता। केवल संस्कार, शिक्षा, योग्यता, कर्म के आधार पर ही परस्पर अन्तर मानता है। मानव जाति की एकता को मान लेने पर जन्मना जात–पात, सामाजिक छुआ– छूत, ऊँच–नीच के वर्गगत बिरादरीवाद के कृत्रिम भेदभाव स्वतः दूर हो जाते हैं।

गुरुदत्त–कोई चौथा भी मूलमन्तव्य है या इसमें भी त्रित्व है।

प्राध्यापक–हाँ, चौथा मूलमन्तव्य है, **'महापुरुषों का सम्मान'** हमारा जीवन तभी सफल होता है, जब हमें परिवार, शिक्षा, प्रशासन, कारोबार आदि में दूसरों का सहयोग मिलता है। यह सहयोग मानव समाज को पीढ़ी दर पीढ़ी मिलता आ रहा है। सहयोग के इन विविध क्षेत्रों में जिसनें अधिक से अधिक को सहयोग दिया, भला किया वस्तुतः वह हमारे लिए पूजनीय है। धर्म, विद्या, विज्ञान, प्रशासन आदि क्षेत्रों के जीवन को सरल–सरस बनाने लिए जिन्होनें भी महान कार्य किया, वे हमारे लिए आदर के योग्य हैं। अतएव आर्य समाज ऐसे महापुरुषों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, सीताष्टमी आदि पर्व मनाता है क्योंकि–

'गढ़ते हैं इतिहास देश का।
और
जिन का दिया अमृत जग पीता,
अतः
नमन उन्हें मेरा शतबार ।
दिनकर–प्रणति

निकष – आपने सम्माननीय, पूजनीय इनको कहा है, क्या इसके साथ अनुकरणीय शब्द प्रयुक्त नहीं करना चाहिए ?

प्रा. – जिस किसी क्षेत्र में जिस भी व्यक्ति ने अपने समय पर जितना महान कार्य किया हैं। वह महापुरुष तदनुरूप सब के सम्मान का पात्र है। हाँ, समय, स्थान, स्थिति के परिवर्तन की दृष्टि से या विद्या और विज्ञान के विकास के कारण आज बहुत कुछ बदल गया है अतः क्या अनुकरणीय है? इसका निर्णय तो आज पर निर्भर है।

जैसे कि जेम्सवाट और जार्ज स्टीफैसंन का आविष्कृत इंजन अपने समय पर महत्वपूर्ण था। अतः वे अपने क्षेत्र में स्मरणीय हैं, उनकी खोज भावना तो आज भी अनुकरणीय है, पर अब वह इंजन केवल पुरातत्व की ही वस्तु है क्योंकि आज सर्वत्र उस इंजन के आधुनिक रूप ही अनुकरणीय कोटी में आते हैं आउट ऑफ डेट की अपेक्षा आधुनिक रूप ही अनुकरणीय कहा जा सकता है। यही बात सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक आदि क्षेत्रों में भी सामने रखकर अनुकरणीय का निर्णय लिया जाये तो अधिक अच्छा हो।

हाँ, यहाँ एक और विशेष विचारणीय बात यह भी है कि आर्य समाज की दृष्टि से हर

महापुरुष जहाँ अपने सहयोग के अनुरूप महत्वपूर्ण हैं, वहाँ उतने से ही वे ईश्वर का स्थान नहीं ले सकते। दोनों का अपना–अपना अलग महत्व है।

ब्रह्मदत्त–हाँ, यहाँ आपने मन्तव्य के साथ मूल शब्द का प्रयोग किस दृष्टि से किया है?

प्राध्यापक–जैसे मूल के सजीव होने से वृक्ष हरा–भरा और पत्ते, शाखा, पुष्प, फल से मण्डित होता है। {**सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः–छान्दोग्य 6,8,4**} ठीक वैसे ही आर्य समाज की प्रगति, समृद्धि, सफलता का मूल ये मन्तव्य ही है। इनको अपनाना 'जड़ को सींचना है' अन्यथा 'पत्रों को पानी देकर श्रम, धन, बल, बुद्धि का साधारण प्रयोग मात्र ही है।

हरिकृष्ण– ऐसे विचार तो आजकल प्रायः सभी प्रकट करते हैं। इसमें आर्य समाज की क्या विशेषता है?

प्राध्यापक–यदि आप सब के पास समय हो, तो **'सुसंगत जीवन पथ'** पढ़ें, यदि मूलमन्तव्य की इन बातों का वहाँ सांगो–पांग वर्णन किया गया है। हाँ, इसमें कोई शक नहीं, कि इस प्रकार विचार फुटकर रूप में यत्र–तत्र सर्वत्र मिल जाते हैं पर सैद्धान्तिक मान्यता नहीं मिलती। अतः आजकल शिष्टाचार के रूप में ऐसी बातें अनेक करते हैं, पर दिल से और व्यवहार में इन बातों को स्वीकार नहीं करते। जैसे कि अनेक राजनीतिक दलों के नेता अपने मंचों से हरिजन सुधार की बातें करते हैं पर जन्मना जात पर विश्वास रखने के कारण अपने घर और व्यवहार में छुआ–छूत को मानते हैं। इस प्रकार के शिष्टाचार से समस्या हल नहीं हो सकती अतः आर्य समाज यह कहता है कि मानव जाति की एकता को मूल मन्तव्य, सच्चाई के रूप में स्वीकारा जाए।

यदि किसी शास्त्र में जन्मना जात–पात की बात मिलती है तो वह उस अंश में मान्य नहीं है। जन्मना जात–पात की बात मानने वाले –हरिजन, सुधार, छुआछूत निवारण और ऐसों को समान अवसर देने की बात नहीं कर सकते। जैसे श्री निरंजनदेव शंकराचार्य का पुनः वक्तव्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि एक ओर आप शास्त्र की हर बात को प्रमाण मानते हैं और दूसरी और शास्त्र विरुद्ध बात की पुष्टि करते हैं।

शिव कुमार–आप शिष्टाचार और व्यवहार अन्तर की बात इसको क्यों कह रहे हैं? हाँ, भक्त कबीर, रविदास जी ने भी तो मानव जाति की एकता की बात की है ?

प्राध्यापक–शिष्टाचार और व्यवहार के अन्तर को समझने के लिए राजनीतिक नेताओं का उदाहरण स्पष्ट है जिसका ऊपर संकेत किया जा चुका है।

हाँ, भक्त कबीर, रविदास आदि ने स्पष्ट शब्दों में इसका निर्देश किया है, पर उनकी विचारधारा, परम्परा में यह मूलमन्तव्य नहीं बना अतः भक्त कबीर रविदास के नाम से ही विशेष वर्ग बन गए हैं। वे वर्ग भक्त कबीर, आदि के वचनों को पढ़ते हुए भी आपस में जात–पात के भेदभावों में उलझे हुए हैं अर्थात् यह पढ़ना केवल शिष्टाचार ही हो गया है और वह व्यवहार में नहीं लाया जाता अन्यथा भक्त कबीर, रविदास जी द्वारा अनुभूत इस अन्याय के बाद तो इनके भक्तों में **'मानव जाति की एकता'** की भावना घर कर जाने से इनमें परस्पर जात–पात जन्य व्यवहार नहीं रहना चाहिए?

हंसराज–क्या नारियों के प्रति होने वाले सामाजिक शोषण में भी ऐसी ही कोई गुत्थी है ?

प्राध्यापक–हाँ, यही बात यहाँ भी पूरी तरह से लागू होती है क्योंकि जो इस मूलमन्तव्य को स्वीकार करता है कि नारियाँ भी पुरुषों की तरह मानव समाज की समान सदस्या है, तो वह फिर महिलाओं को सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक, कारोबारी, राजनीतिक क्षेत्र में समान अवसर और अधिकार का अवश्य ही समर्थन करेगा। किसी के महिला होने मात्र से उनके जन्म को बुरा नहीं मानेगा।

182, शालीमार नगर
होशियारपुर–146001

अष्टम रश्मिः

● आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

{आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार द्वारा रचित 'वैदिक रश्मियाँ' पुस्तक में पाँच भागों में वैदिक मंत्रों की सूक्तियों तथा मंत्रों की अत्यन्त सरस व्याख्यायें उपलब्ध हैं। तीसरे भाग में यजुर्वेद की सूक्तियों पर चर्चा की गई है। प्रथम मंत्र की पांच सूक्तियों पर प्रकाश डाला गया है। पाठकों के लिए प्रस्तुत है प्रथम रश्मि–सम्पादक}

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्
मा स्वसारमुत स्वसा।
– अथर्व. 3.30.3

अन्वयार्थ–(भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्) भाई को चाहिये कि वह अपने भाई से द्वेष न करे, अप्रीति न करे, वैर न करे, शत्रुता न करे, **(उत स्वसा स्वसारं मा द्विक्षत्)** और बहिन को भी चाहिये कि वह अपनी बहिन से द्वेष न करे, अप्रीति न करे, वैर न करे, शत्रुता न करे।

इस मन्त्र में जैसे वेद ने सब भाईयों को यह उपदेश दिया है, यह आदेश दिया है कि वे परस्पर एक–दूसरे से द्वेष न करें, अप्रीति न करें....। वैसे ही सब बहनों को भी यह उपदेश दिया है, यह आदेश दिया है कि वे भी परस्पर एक–दूसरे से द्वेष न करें, अप्रीति न करें, शत्रुता न करें, वैर न करें।

अब अगर सचमुच वेद के इस उपदेश के आधार पर, वेद के इस आदेश के अनुसार एक बहिन दूसरी बहिन से द्वेष न करे, अप्रीति न करे, अर्थापत्ति से यह निकला कि वह अपनी बहिन से प्रीति करे, अर्थात् वह अपनी बहिन को देखकर वा सुनकर तृप्त हो, प्रसन्न हो, खुश हो, तो फिर सहज ही जो बहिन अपनी बहिन को देखकर तृप्त–प्रसन्न वा खुश होगी वा फूली नहीं समायेगी, तो फिर सहज ही अगर वह बड़ी बहिन होगी, तो वह यह सोचेगी कि–"न जाने इस अपनी प्यारी छोटी बहिन को मैं कितना प्यार करूँ, कितना स्नेह करूँ, कितना लाड करूँ, न जाने इसको मैं क्या खिला दूँ, क्या पिला दूँ, क्या पहना दूँ, क्या दे दूँ आदि–आदि।" इसी तरह यदि किसी छोटी बहिन को अपनी बड़ी बहिन मिलती है और वह उससे द्वेष नहीं करती, अप्रीति नहीं करती, अर्थापत्ति से अगर वह उसको देख वा सुन कर उससे प्रीति करती है, उसको देख वा सुन कर वह तृप्त होती है, प्रसन्न होती है, खुश होती है, फूली नहीं समाती है, तो फिर सहज ही वह अपनी मातृ तुल्य बड़ी बहिन को सिर आँखों पर बैठाना चाहती हुई सोचती है कि–"न जाने इसको मैं आदर–सम्मान पूर्वक कहाँ बैठा दूँ, क्या खिला दूँ, क्या पिला दूँ, कहाँ सुला कर विश्राम करा दूँ, आदि–आदि।"

सचमुच वेदोपदेश के अनुसार, इस वेदोपदेश के अनुसार अगर बड़ी बहिन अपनी छोटी बहिन से द्वेष नहीं करती अर्थात् वह उससे प्रीति करती है, उसको देख वा सुन कर तृप्त होती है, प्रसन्न होती है, खुश होती है, तो फिर जैसे पिता के अभाव में एक बड़ा भाई पितृ तुल्य होने से अपनी उस प्रिय छोटी बहिन को पिता के समान पालता– पोसता है, पढ़ाता–लिखाता है, और पिता के तुल्य ही वह उसके उज्ज्वल–सुखद भविष्य के लिये, उसके सुख–सौभाग्य से सम्पन्न भावी उत्तम जीवन के लिये वह जी–जान से प्रयत्न करता है। ऐसे ही माता पिता एवं बड़े भाई आदि के अभाव में जो बड़ी बहिन होती है, वह भी यदि इस वेदोपदेशानुसार, इस वेदादेशानुसार उस अपनी प्रिय छोटी बहिन को देख वा सुन कर द्वेष नहीं करती, अप्रीति नहीं करती, अर्थात् प्रीति करती है, उसको देख वा सुन कर सदा तृप्त होती है, प्रसन्न होती है, खुश होती है, तो फिर वह बड़ी बहिन ही मातृ रूप धारण करके अपनी छोटी प्रिय बहिन को पुत्री तुल्य पालती–पोसती है, पढ़ाती–लिखाती है, और उसके उज्ज्वल–सुखद भविष्य के लिये अच्छे से अच्छे वर की तलाश करती है–अच्छे से अच्छे घर–परिवार की खोज करती है, और वह उस अपनी लाडली प्रिय पुत्री तुल्य बहिन के लिये उसकी आन्तरिक भावनाओं के अनुरूप ही वर खोजती है, जो कि न कभी अण्डे–मांस खाता हो, न ही कभी बीड़ी–सिगरेट– शराब आदि पीता हो, वरन् वह तो फिर उस से भी अधिक पढ़ा–लिखा हो, उससे भी अधिक बुद्धिमान् और समझदार हो, आस्तिक हो, अर्थात् ईश्वर और धर्म में जिस की प्रगाढ़ आस्था हो, प्रति दिन जो सन्ध्योपासना करता हो, यज्ञादि शुभ कर्मों में भी वह बहुत रुचि रखता हो, इत्यादि। यह सब कुछ वह बहिन करती है, जो एक ही माँ से जन्म लेने के कारण कहने को तो उसकी बड़ी बहिन होती है पर माँ के अभाव में वह जो भी उत्तरदायित्व निभा रही होती है तो उसको देख– देख कर लोग प्रेरणा लेते हैं...। छोटी बहिन भी तब कहने को तो उसकी छोटी बहिन होती है, पर उसके मातृ तुल्य व्यवहारों को देख–देखकर उसके दिल में उसके प्रति तब ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होने लगती है जैसे कि वह उसकी बहिन न होकर उसको जन्म देने वाली साक्षात् माँ ही हो, उसका पतिदेव जैसे कि उसका जीजा न होकर साक्षात् पिता ही हो, उनके पुत्र कहने को तो उसके भाञ्जे हों पर व्यवहारों में वे साक्षात् भाई ही होते हैं, लेखक ने अनेकों बहिनें ऐसी देखी हैं जिन्हें अपनी बड़ी बहिनों ने अपने सहयोगी पति के साथ मिलकर मातृ–पितृ तुल्य पाला–पोसा, पढ़ाया–लिखाया, संरक्षण दिया, और पुत्री तुल्य उस बहिन के उज्ज्वल सुन्दर भविष्य के लिए घर–वर खोज कर उसका विवाह कर दिया। और इतना ही नहीं, आज तक भी वे उसके प्रति मातृ–पितृ–तुल्य कर्त्तव्यों को निभा रहे हैं।

इसके विपरीत अगर एक बहिन दूसरी बहिन से द्वेष करती है, अप्रीति करती है, शत्रुता करती है, वैर करती है, दुश्मनी करती है। अर्थात् वह उसको देख वा सुनकर तृप्त नहीं होती, प्रसन्न नहीं होती, खुश नहीं होती, तो फिर उस बहिन को अपनी उस बहिन से मिलना भी बड़ा भारी लगता है, उसके साथ बात करना भी उसे समय बर्बाद करना ही लगता है, उसको खिलाना–पिलाना, पालना–पोसना उसे फिर बहुत बड़ा भार प्रतीत होता है, फिर यही कहा जाता है कि–"हम क्या करें, इसके अपने कर्म ही ऐसे होंगे जो यह इस प्रकार बिना माता–पिता के संरक्षण के रह गयी। हम से तो अपने से उत्पन्न हुए जो दो–तीन बच्चे हैं, उन्हीं का पालन–पोषण आदि ही नहीं हो पा रहा है, इसको हम क्या सम्भालें। तो इस प्रकार द्वेष– अप्रीति वह चीज़ जिसके कारण फिर इस छोटी बहिन को भी अपना बड़ा भाई भाता नहीं वा बड़ी बहिन भाती नहीं, न उसको देखना उसे भाता है, न उससे बात करनी उसको अच्छी लगती है, न ही उसको कुछ खिलाना–पिलाना वा उसका आदर– मान करना उसको सुखद प्रतीत होता है। वह तो फिर उसको ज़रा भी देखने–भालने, मिलने–जुलने से भी कतराती है, उसके सम्बन्ध में किसी से फिर बात करना भी उसको भाता नहीं। यही स्थिति बड़ी बहिन की भी लगभग हो जाती है। तो इस प्रकार द्वेष वह चीज है, अप्रीति वह चीज है, जो दोनों को परस्पर हृदय से इतना दूर कर देती है कि फिर उस दूरी को स्केल पैमाने से नापा नहीं जा सकता भूलचूक से वे दोनों कभी किसी सभा–सोसायटी में कहीं परस्पर मिल भी गयीं, एक–दूसरे के सम्मुख आ भी गयीं तो भी उनके हृदय की दूरी उन्हें एक–दूसरे से स्नेह पूर्वक मिलने नहीं देती, मिल बैठकर एक– दूसरे का कुशल–मंगल नहीं पूछने देती, एक–दूसरे को मिल–बैठकर कुछ खाने–पीने नहीं देती, एक–दूसरे को प्रेमपूर्वक कुछ लेने–देने नहीं देती, एक–दूसरे के बाल–बच्चों का हाल–चाल नहीं पूछने देती, एक–दूसरे के दुःख–सुख में एक–दूसरे को इमदाद–सहायता–सहयोग नहीं करने देती, आदि आदि।"

वास्तव में स्वसा कहते हैं बहन को जिसका कि अर्थ होता है–**"सु–सुष्टुतया (असु–क्षेपणे) अस्यते क्षिप्यते–स्नेहपूर्वकं प्रदीयते परकुलेषु वा या सा स्वसा।"** अर्थात् अच्छी तरह से पाल–पोस कर मर्यादा पूर्वक दूसरे कुलों में प्रदान किया जाता है, जिससे वह स्वसा कहलाती है। यदि एक बेटी ऐसी है जिसके माता– पिता वा पिता कभी नहीं रहते, तो पिता के अभाव में उसका पितृ तुल्य बड़ा भाई वा मातृतुल्य बड़ी बहिन उसको स्नेह–लाड पूर्वक अपनी सन्तति सम पढ़ा–लिखा कर उसके हाथ पीले कर के उसका अच्छे घर–परिवार में विवाह कर देते हैं।

इस प्रकार माता, पिता, भ्राता आदि के विषय में बहुत कुछ सोचने–विचारने पर भी हर बेटी, हर पुत्री वा हर स्वसा, हर बहिन अपने–अपने कर्मों के अनुसार ही अगले घर–परिवार को प्राप्त होती है। एक बहिन एक घर–परिवार में जाकर अपने पितृ–कुल से बढ़कर बहुत धन–वैभव, और बहुत सुख–सौभाग्य से सम्पन्न हो जाती है और दूसरी अपने कर्मानुसार किसी ऐसे घर–परिवार में चली जाती है जहाँ कि जीवन निर्वाह ही बड़ी कठिनाई से होता है, तो ऐसी अवस्था में भी बहिन बहिन से द्वेष न करे, अप्रीति न करे, ईर्ष्या न करे, घृणा न करे, नफरत न करे। वह यही सोचे कि उसको अपने कर्मों के अनुसार ही ऐसा सुयोग्य वर मिला, अच्छा धन–वैभव, सुख–सौभाग्य से सम्पन्न परिवार मिला और मुझे जो यह घर–परिवार वा गुज़ारा मात्र जिसमें चल सके, ऐसा घर मिला, यह भी अपने पिछले ही कर्मानुसार मुझे मिला है। फिर भी वह मेरी बहिन है, अगर वह मेरे से निम्न स्थिति में है तो मैं उससे घृणा न करूँ, वरन् उससे और भी बढ़कर प्यार करूँ, उसकी कठिनाईयों में दिल से उसके साथ स्नेह–सहानुभूति और सहयोग करूँ और अगर वह उच्चावस्था में है, धन–वैभव से सम्पन्न है, उसके पुत्र ही पुत्र हैं, मेरी केवल लड़कियाँ ही लड़कियाँ हैं वह बड़े मज़े में है, तो भी मैं उससे ईर्ष्या न करूँ, उससे डाह न करूँ, उसके धन–वैभव एवं पुत्रों को देख–देख

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

☞ पृष्ठ 02 का शेष

प्रभु-भक्ति

जाता, अपने–आपको न उसका स्वामी समझता है, और न ही उनका दास। स्वामी–भाव और दास–भाव, इन दोनों से ऊपर रहता है। यदि उसने लोभ किया तो फँस गया, पकड़ा गया और जकड़ा गया।

मन लोभ करे भी तो क्यों ? आखिर यह धन है ही किसका ? क्या रावण का यह धन था ? क्या कंस इसका स्वामी था ? क्या औरंगजेब और कारूँ के पास यह था ? मुगल बादशाहों का यह बना या किसी और का ? किसी का भी नहीं भोले यात्री, किसी का भी नहीं ! यह तो केवल भगवान् का है। तू इसे कितना एकत्र कर लेगा और क्या ऐसा करने से तू सुखी हो सकेगा ? यदि ऐसा होता तो आधुनिक काल का सबसे बड़ा धनी अमेरिकन अपने–आपको सबसे बड़ा दुःखी न बतलाता। मिस्टर हेनरी फोर्ड के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसकी वार्षिक आय 2400000 डॉलर है अर्थात् 80000 पौंड या सोलह लाख रुपया दैनिक। इस समय उसके पास नकद तथा सम्पत्ति 48 करोड़ पौंड की है परन्तु उसका धन उसे कोई विशेष सुख नहीं दे रहा इसलिए केवल धन सुख का कारण नहीं।

इसका अर्थ यह नहीं कि मैं धनोपार्जन के विरुद्ध हूँ। उतना धन कमाइये, जितना धर्म तथा न्याय से कमा सकते हैं। पाप से धनोपार्जन न कीजिये और दूसरों का अधिकार छीनकर मत समझिये कि आप सुखी हो सकेंगे। अथर्ववेद कहता है–

अमा कृत्वा पाप्मानं
यस्तेनान्यं जिघांसति।
अश्वानस्तस्यां दग्धायां
बहुलाः फट् करिक्रति।।

(4–18–3)

'जो पाप करके, उसके द्वारा दूसरे को हानि पहुँचाना चाहता है। (वह भूल कर रहा है,) शीघ्र ही बहुत–से पत्थर उसके सिर पर फट–फटकर गिरेंगे।'

पाप करनेवाले को इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि वह दूसरों को धोखा देकर स्वयं ही बचा रहेगा। समय आनेवाला है, जब ये पाप पत्थर बनकर उसका सिर फोड़ देंगे; इसलिए धन के लिए पाप न कीजिये, इसे एकत्र तो कर लीजिये, लेकिन इसी को अपना प्राण न समझ लें। इसी के साथ बिक मत जाइये।

तैरने और डूबनेवाली नौकाएँ–

नदी के किनारे खड़े होकर आपने देखा होगा कि नदी में कुछ नौकाएँ तैर रही होती हैं और कुछ डूबी हुईं। मैं नौका का विरोधी नहीं हूँ और न ही उसके तैरने का विरोध करता हूँ। मै हूँ विरोधी उनके डूब जाने का। उनके तैरने और डूब जाने का क्या कारण है ? तैरनेवाली नौकाओं में छेद न होने के कारण उनमें पानी आ नहीं सकता। छोटा–मोटा छेद होने से जो पानी सूराख की राह अन्दर आ भी गया, उसे बाहर फेंका जा सकता है इसलिए ऐसी नौकाएँ न केवल स्वयं तैरती हैं अपितु दूसरे यात्रियों को भी पार ले जाती हैं। जो डूब गई हैं, उनमें छेद हो जाने से इतना पानी भर गया है कि वे अपने को पानी से ऊपर न रख सकीं इसलिए अब न स्वयं तैरने के योग्य रही हैं और न दूसरों ही को पार ले जाने में समर्थ हैं। धन की नदी में छलाँग लगाने में कोई हानि नहीं। खूब धन कमाइये, परन्तु ध्यान रखिये कि धन का पानी मन में न जाने पाये। यदि यह चला गया तो फिर डूबना ही होगा। धन में हम तैरें, धन हमारे ऊपर न तैरने लगे। बस, इतनी–सी बात से जीवन बिगड़ने की बजाए सुधरने लगता है। तब धन देखकर मोह या लोभ पैदा नहीं होता और जब मोह नहीं तो फिर आनन्द–ही–आनन्द है, सुख–ही–सुख है। एक बार एक शिष्य ने अपने गुरु से प्रश्न किया–'सुख किसे प्राप्त होता है ?' गुरु ने उत्तर दिया–'जिसका हृदय शान्त है।'

'हृदय किसका शान्त है ?'

'जिसका मन चंचल नहीं।'

'मन किसका चंचल नहीं ?'

'जिसे किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं।'

'अभिलाषा किसे नहीं है ?'

'जिसे किसी वस्तु में आसक्ति नहीं।'

'आसक्ति किसे नहीं ?'

गुरु जी ने शान्त–स्निग्ध मुद्रा से कहा–'जिसकी बुद्धि में मोह नहीं है।'

चाह मिटी चिन्ता गई,
मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछु ना चाहिये,
सोई शाहन शाह।।

यह सब–कुछ स्पष्ट हो जाने और यह मालूम हो जाने पर कि संसार असार है और जिस शरीर में हमें रक्खा गया है, वह भी क्षणभंगुर है, हमारा कर्त्तव्य यह हो जाता है कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस संसार और इस शरीर से जितना लाभ उठा सकें उठायें, और वह लाभ यही है कि अपनी मनोवृत्ति भगवान् के भक्तों की–सी बनायें–

श्वास–श्वास पर ओम् कह,
वृथा जन्म मत खोय।
क्या जाने इस श्वास को,
आवन होय न होय।।

भगवान् की भक्ति में खोकर, शान्त और शीतल मन से जरा ध्यान लगाकर सुनिये–कवि कितने मधुर, आकर्षक स्वर में आपको चेता रहा है–

सुमिरन कर मन ओम् नाम दिन
नीके बीते जाते हैं !
पाप–गठरिया सिर पर भारी, पग
नहीं आगे जाते हैं।
मात–पिता पति कुल धन दारा,
संग नहीं कोई जाते हैं।
दुनिया दौलत माल खज़ाना, काम
नहीं कुछ आते हैं।
सुमिरन कर मन ओम् नाम दिन
नीके बीते जाते हैं !

परमगति कैसे मिलेगी?

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो
हृदि निरुध्य च।
मूर्धन्याधायात्मनः प्राणमास्थितो
योगधारणाम्।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म
व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं
स याति परमां गतिम्।।

(गीता 8,12–13)

"सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर (अर्थात् इन्द्रियों को विषय से हटाकर) तथा मन को हृद्देश में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके, योगधारण में स्थित हुआ, जो पुरुष ओ३म् इस एक अक्षर–रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसी का चिन्तन करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।"

परन्तु यह अवस्था अन्त समय में तभी प्राप्त हो सकती है जब जीवन–काल में इसका अभ्यास किया हो। अतएव सारा काम छोड़कर भी इसका अभ्यास करो।

दुःखों का नाश कैसे होगा ?

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।

श्वेता. 6–20

जब लोग चर्म की नाईं आकाश को लपेट सकेंगे, तब प्रभु के जाने बिना दुःख का अन्त होगा।

क्रमशः

☞ पृष्ठ 08 का शेष

अष्टम रश्मिः

कर जलूँ नहीं, कुढूँ नहीं, वरन् उस बहिन का यह सब देख–देख कर सदा प्रसन्नता का अनुभव करुँ, हमेशा खुशी महसूस करुँ, प्रभु का हृदय से धन्यवाद करुँ कि चलो एक बहिन तो ऐसी है जो सब प्रकार से प्रसन्न है, खुशहाल है, सुख–सौभाग्य से सम्पन्न है। उसके यहाँ कार भी है, उसकी अपनी कोठी भी है। भगवान् ने बच्चे भी उसे बड़े प्यारे–प्यारे दिये हैं, जो बड़े ही अच्छे हैं, अच्छे खासे स्कूल में पढ़ रहे हैं, सुयोग्य हैं। भगवान् की कृपा से मेरी बहिन को कुछ आर्थिक कठिनाईयाँ भी नहीं हैं, आदि–आदि। उस बहिन के बढ़ते हुए यश को देख कर वह बहिन सदा यही अनुभव करती है जैसे कि उसका अपना ही यश बढ़ रहा हो। उसके बढ़ते हुए धन–वैभव, सुख–सौभाग्य को देखकर वह सदा यही अनुभव करती है कि–जैसे उसका अपना ही धन–वैभव, सुख–सौभाग्य बढ़ रहा हो। उसकी होती हुई प्रशंसा सुनकर भी वह ऐसा ही अनुभव करती है जैसे कि उसकी अपनी ही प्रशंसा हो रही हो। और अगर उसके विपरीत वह उसके उस बढ़ते हुए धन– वैभव, सुख–सौभाग्य, जमीन–जायदाद, कार–कोठी, पुत्र–पौत्री आदि को देख–देखकर उससे ईर्ष्या करती है, कुढ़ती है, वा द्वेष करती है, अप्रीति करती है वा उसे देख–देख कर अपने भाग्य को कोसती है, तो फिर वह इस बहिन से स्नेह की बात तो दूर रही, यह तो फिर उसकी तब शक्ल भी नहीं देखना चाहेगी, फिर तो वह सदा उसकी निन्दा करेगी और कहेगी कि–उसको अपने धन–वैभव का, कार–कोठी का, अपने पुत्र– पौत्रों का, अपने पति –पुत्र के पदों एवं प्रतिष्ठाओं का बड़ा अभिमान है, बड़ा गर्व है। ऐसा लगता है कि जैसे उसी के पास ही यह सब कुछ आ गया हो। पर इस धरती पर इनसे भी बढ़कर लाखों–करोड़ों ऐसे बड़े लोग हैं। यह अपने को समझती क्या है ? और इसके पास यह सब कुछ अगर है भी और हमारे पास नहीं भी है, तो हम कुछ इस से माँग कर थोड़ी ही खाते हैं। अपनी मेहनत–मजदूरी करते हैं, खून–पसीना एक करते हैं, फिर जो भी कुछ हमें मिलता है, उसी में ही हम अपना काम चलाते हैं। हमने जीवन में तो कभी चार पैसे भी इससे नहीं माँगे होंगे! हाँ छोटी बहिन होने के कारण कभी मिलना हुआ तो कुछ न कुछ उसे दिया ही होगा। और फिर इस माया का भी क्या ठिकाना! आज इनके पास है, कल इसको छोड़कर वह कहीं और अपना ठिकाना बना ले, तो फिर तब तो ये हम से भी गए–बीते हो जायेंगे। इसलिये इस धन–वैभव आदि–आदि पर इसका अहंकार में रहना हमें जरा भी अच्छा नहीं लगता इत्यादि।

क्रमशः

लेखक की पुस्तक
'वैदिक रश्मियाँ' से साभार

पत्र/कविता

जनरल मानेकशा

सैम मानेकशा का पूरा नाम होरमसजी फामजी जमोदीज मानेकशा है। तीन अप्रैल, 1914 को अमृतसर में पारसी परिवार में जन्मे मानेकशा का सैन्य करियर ब्रिटिश इंडियन आर्मी से शुरू हुआ था। करीब चार दशक तक चले इस करियर के दौरान उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध, 1962 के भारत–चीन युद्ध, 1965 के भारत–पाकिस्तान युद्ध और 1971 के भारत–पाकिस्तान युद्ध में हिस्सा लिया। भारत चीन युद्ध और उसके बाद की सारी लड़ाइयां मानेकशा के नेतृत्व में लड़ी गई। उनकी निडरता और बहादुरी की कायल पूर्व प्रधानमंत्री स्व. इंदिरा गांधी भी थी। वर्ष 1971 में हुए युद्ध में उनके नेतृत्व में भारत ने पाकिस्तान को करारी शिकस्त दी थी। इस युद्ध के फलस्वरूप ही बंग्लादेश का निर्माण हुआ था।

रौबीली मूंछों वाले मानेकशा के काम करने की शैली भी काफी अनौपचारिक थी। वह सलाह के लिए कई बार अपने स्टाफ के अधिकारियों के कमरे में सीधे चले जाते थे। सैम अपने जवानों के कल्याण के रास्ते में आने वाले किसी भी व्यक्ति के रास्ते में बहादुरी के साथ खड़े हो जाते थे।

रक्षा मंत्री कृष्णमेनन ने आदेश पारित किया कि सैनिकों का इस्तेमाल निर्माण श्रमिक के रूप में किया जाना चाहिए। सैम ने इसे मानने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि उनकी डिवीजन के जवान दुश्मनों से लोहा लेने के लिए प्रशिक्षित किए गये है। उन्हें मजदूर के तौर पर तैनात नही किया गया है। सैम अपनी बात को लेकर अडिग रहे और मेनन को झुकना पड़ा। वर्ष 1968 में सैम को मिजो हिल्स विद्रोह से चतुराई से निपटने के लिए पदम भूषण से सम्मानित किया गया था। पहली बार नागरिक सम्मान किसी सैन्य अधिकारी को दिया गया था। अम्बादत्त पाण्डेय (पिता : महेशचन्द्र पाण्डेय अध्यापक, पिथौरागढ़– उत्तराखण्ड) कुछ काल तक मानेकशा के वाहनचालक थे।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चारहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

कागज का नहीं टुकड़ा

कागज का नहीं टुकड़ा अपना ये वोट भाई।
किस्मत है ये वतन की हर नैन की बीनाई।
ये लोकतंत्र कैसा सब कुछ है इसमें पैसा,
घर–घर में बँधा भैंसा कैसे मिले मलाई।
जीकर भी क्या है करना लेकिन कठिन है मरना,
सुख छीन ले गई है ये कौन आई–आई।
चोटी से बड़ी रोटी, रोटी से बड़ी चोटी,
ये उलझने हैं कैसी मेधा समझ न पाई।
आजाद ये वतन है शव हैं, नहीं कफन है,
खादी बनी खुदा है रोती है क्यों खुदाई।
करते सदा ही वादे ये वक्त के शहजादे,
सब बन गए हैं दादे देता न सच दिखाई।
ये तख़्त बदल डालो ये ताज कुचल डालो,
ये चूड़ियाँ निकालो कटने लगी कलाई।
मत बर्छियाँ उठाओ ये पर्चियाँ उठाओ,
उन पर मुहर लगाओ जिनमें न कुछ बुराई।
फूटें न जलते हंडे भग जायें दुष्ट पण्डे,
जो वोट बने डंडे मर जाएँ सब कसाई।
ये पाँच वर्ष पीछे ऊँचे से आते नीचे,
रहते हैं आँख मीचे सत्ता के ये जँवाई।
इनको सबक सिखा दो जनता है कुछ दिखादो,
बहरों को फिर 'मनीषी' पड़ने लगे सुनाई।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन 'मनीषी'
डी–801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट, सैक्टर –92,
नया गुरुग्राम हरियाणा–122505
मो. 9810835335

ऐसे थे हमारे पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी

गुरुदत्त एक सक्रिय विद्यार्थी थे। चाहे 1881–82 ई. का हिन्दी–उर्दू विवाद था, चाहे 1883 ई. में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गिरफ्तारी, उन्होंने प्रत्येक आन्दोलन में पूरी रुचि ली। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गिरफ्तारी के विरुद्ध 26 मई, 1883 सायं को छह सौ से अधिक छात्रों ने ट्रिब्यून परिसर में एक सफल सभा की। इसमें गुरुदत्त का भाषण सर्वाधिक प्रभावोत्पादक था। ट्रिब्यून ने लिखा था कि गुरुदत्त ने "एक अत्युत्तम भाषण दिया और कहा कि इस दुःख भरे देदीप्यमान अवसर पर मेरे प्रसन्नता और दुःख के मिश्रित भाव हैं। दुःख इसलिए कि हमें एक बन्दी सम्पादक के लिए आँसू बहाने पड़ रहे हैं और देदीप्यमान इसलिए कि आज सभी साथी विद्यार्थी एक सांझे ध्येय के लिए एकत्र हुए हैं तथा ऐसे बीज बोए गए हैं जिनसे सामाजिक एवं नैतिक स्वाधीनता का फल प्राप्त होगा। उन्होंने कहा कि जब भावना और तर्क में टकराव हो तो निर्णय लेना कठिन हो जाता है।"

ऋषि दयानन्द सरस्वती के देहावसान पर जब जालन्धर में शिवनारायण वकील के कमरे में शोकसभा करने का विचार बना तो आर्यसमाज लाहौर से वक्ता मांगे गए। एतदर्थ गुरुदत्त और हंसराज को जालन्धर भेजा गया। महात्मा मुन्शीराम अपने साथियों सहित उनके स्वागतार्थ स्टेशन पर पहुँचे। छोटी आयु के साधारण–से दुबले–पतले दो विद्यार्थियों को देखकर सब सोचने लगे कि आर्यसमाज लाहौर ने यह क्या मजाक किया ! ये क्या भाषण देंगे प्रबुद्ध लोगों के समक्ष ! परन्तु जब हंसराज तथा गुरुदत्त ने क्रमशः उर्दू तथा अंग्रेजी में ऋषिवर का गुणगान किया तो सब विस्मित रह गए। कोई भी वकील उनके धन्यवाद में कुछ बोलने का साहस न कर सका। आखिर देवीचन्द्र वकील ने दो–चार शब्दों में औपचारिकता निभाई।

डॉक्टर रामप्रकाश द्वारा लिखित–'पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी' पुस्तक से साभार

****

चीकू

चीकू को हिंदी में चीकू ही कहा जाता है, जिसे अंग्रेजी में Sapodilla (सपोडिला) या Sapota (सपोटा) के नाम से भी जाना जाता है। यह एक मीठा और भूरे रंग का ट्रॉपिकल फल है, जो दानेदार गूदे के साथ आता है। यह विटामिन, फाइबर और एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होता है, जो ऊर्जा देने और पाचन शक्ति बढ़ाने के लिए बहुत फायदेमंद माना जाता है।

चीकू के बारे में मुख्य बातें :

हिंदी नाम : चीकू

अंग्रेजी नाम : Sapodilla (सपोडिला), Sapota (सपोटा)

स्वाद : बहुत मीठा और रसीला

उपयोग : सीधे खाने, मिल्कशेक और मिठाई (Dessert) बनाने में

फायदे : ऊर्जा प्रदान करना, पाचन में सुधार, आंखों के लिए फायदेमंद

यह फल पूरे साल मिलता है, लेकिन इसका सेवन हमेशा अच्छी तरह पकने के बाद ही किया जाना चाहिए क्योंकि कच्चा फल कठोर और कसैला होता है।

सोहन लाल डी.ए.वी. महाविद्यालय अम्बाला में लोहड़ी महोत्सव

सोहन लाल डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय, अम्बाला शहर में 13 जनवरी 2026 को पारंपरिक लोक पर्व लोहड़ी का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के दौरान महाविद्यालय परिसर में उत्साह, उल्लास और पारंपरिक रंगों की छटा देखने को मिली।

कार्यक्रम की शुरुआत पारंपरिक रीति–रिवाजों के अनुसार लोहड़ी की पवित्र अग्नि प्रज्वलन के साथ की गई। सभी उपस्थितजनों ने अग्नि में तिल, रेवड़ी, मूंगफली अर्पित कर सुख–समृद्धि एवं खुशहाली की कामना की। छात्र–छात्राओं द्वारा प्रस्तुत पंजाबी लोकगीतों पर गिद्धा एवं भांगड़ा ने कार्यक्रम को जीवंत बना दिया, जिसे उपस्थितजनों ने तालियों के साथ सराहा।

इस अवसर पर महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. पूजा ने लोहड़ी पर्व के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ऐसे आयोजन विद्यार्थियों को अपनी समृद्ध लोकसंस्कृति से जोड़ने का कार्य करते हैं उन्होंने सभी शिक्षकों, कर्मचारियों एवं छात्र–छात्राओं को लोहड़ी की हार्दिक शुभकामनाएं प्रदान कीं।

कार्यक्रम में महाविद्यालय के समस्त शिक्षकगण, गैर–शिक्षक कर्मचारी एवं विद्यार्थी उपस्थित रहे।

कार्यक्रम के समापन पर सभी ने मिलकर पारंपरिक गीत गाए और लोहड़ी की खुशियाँ साझा कीं। यह आयोजन विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के साथ–साथ भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं के संरक्षण की दिशा में एक सार्थक प्रयास सिद्ध हुआ।

डी.ए.वी. नेरुल में पश्चिम क्षेत्रीय वैदिक संगीत गोष्ठी

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, नेरुल (पश्चिम विभाग) में एक वैदिक संगीत गोष्ठी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ पारंपरिक दीप प्रज्ज्वलन द्वारा हुआ, जिसमें श्रीमती सिम्मी जुनेजा, श्रीमती सीमा मेंदीरत्ता (ARO ZONE C & A) तथा पश्चिम विभाग के समस्त डी.ए.वी. विद्यालयों के माननीय प्रधानाचार्य उपस्थित रहे।

दीप प्रज्वलन के उपरांत, कार्यक्रम में पधारे सभी अतिथियों का हरित पौधों द्वारा स्वागत किया गया।

छोटे–छोटे छात्रों द्वारा प्रस्तुत एक प्रभावशाली झांकी के माध्यम से स्वामी दयानंद सरस्वती जी के जीवन–दर्शन को सजीव रूप में उकेरा गया। वर्ष 1875 में आर्य समाज की स्थापना तथा उसके वैचारिक विस्तार के परिणामस्वरूप डी.ए.वी. संस्था की स्थापना पर भी सारगर्भित प्रकाश डाला गया।

कार्यक्रम के आगामी चरण में, पश्चिम विभाग के अध्यापक–अध्यापिकाओं एवं प्रतिभागी विद्यालयों द्वारा प्रस्तुत भावपूर्ण एवं मधुर वैदिक भजनों ने संपूर्ण वातावरण को आध्यात्मिक ऊर्जा से आलोकित कर दिया। उत्कृष्ट प्रस्तुतियों हेतु प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान किए गए। यह आयोजन निश्चय ही महर्षि दयानंद सरस्वती जी के विचारों एवं वैदिक मूल्यों को आत्मसात करने की दिशा में एक प्रेरणादायी एवं स्मरणीय प्रयास सिद्ध हुआ।

पश्चिमी प्रक्षेत्र की इस प्रतियोगिता में पुरस्कृत संगीत अध्यापक अब दिल्ली में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित की जा रही अखिल भारतीय वैदिक संगीत गोष्ठी में अपने–अपने विद्यालय का प्रतिनिधित्व करेंगे।

डी.ए.वी. मूनक में लाला लाजपत राय जयंती मनाई गई

लाला लाजपत राय जयंती (जनवरी 28) के अवसर पर एक हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। इस यज्ञ में विद्यालय के प्राचार्य अध्यापक–अध्यापिकाओं, छात्रों एवं अभिभावकों ने सक्रिय भाग लिया। छात्रों द्वारा मधुर भजन एवं व्याख्यान दिए गए। इसमें विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री संजीव शर्मा, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने भाग लिया।

विद्यालय के प्रधानाचार्य ने लाला लाजपत राय जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उन्होंने दयानंद एंग्लो वैदिक संस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया एवं स्वतंत्रता संग्राम में दिये गए अनमोल बलिदान को स्मरण कर उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित किये। प्राचार्य महोदय ने छात्रों को लाला लाजपत राय के जीवन से प्रेरणा लेने हेतु प्रेरित किया।

प्राचार्य महोदय ने सभी का धन्यवाद किया।

शान्ति पाठ और प्रसाद वितरण से समारोह सम्पन्न हुआ।

आर्य समाज मानव सेवा के 150 स्वर्णिम वर्ष

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

वैदिक विद्या केंद्र, पुदुचेरी में पाँच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन

पुदुचेरी स्थित वैदिक विद्या केंद्र में अभिभावकों, आचार्यगणों एवं विद्यार्थियों के लिए एक पाँच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। यह कार्यशाला वैदिक विद्वान् आचार्य आशीष आर्य जी, दर्शनाचार्य द्वारा संचालित की गई।

कार्यशाला के दौरान आचार्य जी ने संतान और विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के उपाय, जीवन में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन की सही मानसिकता, वैदिक सिद्धांतों का व्यावहारिक परिचय, अभिभावकों एवं आचार्यगणों की भूमिका, तथा स्वयं को सकारात्मक मनोदशा में बनाए रखने जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला।

आचार्य आशीष आर्य जी ने वार्षिक उत्सव में मुख्य अतिथि के रूप में विद्यार्थियों को जीवन मूल्यों से प्रेरक मार्गदर्शन प्रदान किया।

अंतिम दिवस आचार्य जी ने गुरुकुल के विद्यार्थियों की शंकाओं का अत्यंत सरल, सहज और प्रभावी ढंग से समाधान किया। यह सत्र विद्यार्थियों के लिए अत्यंत ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

कार्यशाला के सफल आयोजन पर वैदिक विद्या केंद्र, पुदुचेरी के संचालक श्री पीयूष आर्य जी, श्रीमती वर्तिका आर्या जी एवं मुनि जी ने आचार्य आशीष आर्य जी सहित सभी आचार्यगणों, अभिभावकों एवं सहभागियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत किया।

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून में होगा सामवेद पारायण यज्ञ

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून द्वारा प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 7 दिवसीय सामवेद पारायण यज्ञ प्रातः 7.00 बजे से 9.30 बजे तक, प्रातराश प्रातः 9.30 बजे से 10.00 तक, प्रवचन प्रातः 10.00 बजे से 11.30 बजे तक एवं अपराह्न का कार्यक्रम यज्ञ एवं

एवं गायत्री यज्ञ का विशेष आयोजन सोमवार दिनांक 16 फरवरी से रविवार 22 फरवरी, 2026 तक आश्रम की पर्वतीय इकाई में किया जा रहा है।

योग साधकों के लिये आत्म कल्याण का यह स्वर्णिम अवसर है। इस यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य रवीन्द्र कुमार आर्य, योग के संचालक योगाचार्य स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती तथा प्रवचनकर्ता स्वामी सत्यव्रतानन्द जी सरस्वती हैं।

कार्यक्रम प्रतिदिन प्रातः योगसाधना से आरम्भ होगा जिसका समय प्रातः 4.30 बजे से 6.30 बजे तक, इसके पश्चात् प्रवचन सायं 3.00 बजे से 5.30 बजे तक हुआ करेंगे। सभी साधकों के निवास एवं भोजन का सुप्रबन्ध आश्रम की ओर से निःशुल्क रहेगा।

आत्म–कल्याण के इच्छुक सभी योगसाधक इस सुअवसर का लाभ उठाने के लिये इस आयोजन में भाग लें और अपने आने की अग्रिम सूचना आश्रम के प्रधान श्री विजय कुमार आर्य (09837444469), सचिव श्री प्रेम प्रकाश शर्मा (09412051586) अथवा श्री श्याम आर्य (9896401919) को देकर आवासादि सुविधाओं का लाभ उठायें।

बी.बी.के. डी.ए.वी. फॉर विमेन अमृतसर में नव सत्र पर यज्ञ

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर में नव शैक्षणिक समस्तर के शुभारम्भ के अवसर पर विशेष हवन–यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य यजमान के रूप बताया कि कॉलेज छात्रा सुश्री अंजलि शर्मा (बी.एस सी बायोटेक्नोलॉजी सेम 1) का शोध पत्र, यू आर राव उपग्रह केन्द्र, भारत सरकार अंतरिक्ष विभाग द्वारा स्वीकृत किया गया है।

श्री इंदरपाल आर्य (प्रधान आर्य

में श्री सुदर्शन कपूर, अध्यक्ष स्थानीय सलाहकार समिति सहित प्राचार्या डॉ. पुष्पिंदर वालिया उपस्थित रहीं।

डॉ. पुष्पिन्दर वालिया ने **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** के साथ सर्व मंगल की कामना करते हुए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की, कि इस समस्तर में महाविद्यालय कामयाबी की नई बुलंदियाँ छुए। अपने सम्बोधन में उन्होंने जीवन में वैदिक और आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाने को कहा। संस्थान की उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए, डॉ. वालिया ने समाज, लक्ष्मणसर) ने कॉलेज द्वारा प्राप्त उपलब्धियों पर बधाई देते हुए छात्राओं को जीवन में सात्विक विचारधारा अपनाने और परमपराओं तथा विरासत का दामन थामे जीवनपथ पर अग्रसर रहने के लिए प्रेरित किया।

श्री सुदर्शन कपूर जी ने उपस्थिति का धन्यवाद ज्ञापित किया एवं नव शैक्षणिक समस्तर के लिए शुभकामनायें प्रदान कीं। संगीत विभाग द्वारा ''मेरा जीवन तेरे हवाले'' भजन का गायन कर सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**